श्री गुरवे नमः

ISSN : 3048-6173

शिक्षा कौस्तुभ

त्रैमासिक शोध पत्रिका

वर्ष 02 | अंक 04 | जून 2024 | पृष्ठ 58

अध्यात्म शिक्षा अंक

प्रकाशक

पण्डित मोतीलाल जोशी प्राच्य विद्या अनुसंधान केन्द्र

राजस्थान शिक्षक प्रशिक्षण विद्यापीठ

राजस्थान संस्कृत साहित्य सम्मेलन

प्रेरणा स्रोत : ''संस्कृत सुमेरु'' पं. मोतीलाल जोशी

ISSN : 3048-6173

शिक्षा कौस्तुभ

त्रैमासिक शोध पत्रिका

वर्ष 2 | अंक 4 जून 2024 | पृष्ठ 58

आशीष प्रदाता
- श्री श्री 1008 भुवनेश्वरानंद जी महाराज
- महंत श्री राम प्रसाद जी महाराज
- महंत श्री हरिशंकर दास जी वेदांती

प्रेरणा स्त्रोत
'संस्कृत सुमेरु'
पं. मोतीलाल जोशी

परामर्श मंडल
- देवर्षि कलानाथ शास्त्री
- प्रो. बनवारी लाल गौड़
- प्रो. अभिराज राजेन्द्र मिश्र
- प्रो. युगल किशोर मिश्र
- प्रो. रमेश कुमार पाण्डेय
- प्रो. जयप्रकाश नारायण द्विवेदी
- प्रो. सदानंद दीक्षित
- प्रो. गोपीनाथ शर्मा
- डॉ. सरोज कोचर

निर्णायक मण्डल
- डॉ. राजेश्वरी भट्ट
- प्रो. श्रीकृष्ण शर्मा
- प्रो. ताराशंकर पाण्डेय
- डॉ. रामदेव साहू
- डॉ. कृष्णा शर्मा
- प्रो. कुलदीप शर्मा
- डॉ. सुभद्रा जोशी

प्रबन्ध संपादक
डॉ. राजकुमार जोशी

प्रधान संपादक
डॉ. मनीषा शर्मा

संपादक मंडल
डॉ. सीताराम दोतोलिया
डॉ. निरंजन साहू
डॉ. सुरेंद्र कुमार शर्मा
श्रीमती मीनाक्षी शर्मा

प्रकाशक
पण्डित मोतीलाल जोशी प्राच्य विद्या अनुसंधान केन्द्र
राजस्थान शिक्षक प्रशिक्षण विद्यापीठ
राजस्थान संस्कृत साहित्य सम्मेलन
शाहपुरा बाग, आमेर रोड़, जयपुर
Ph. : +91-141-2671967 | E-mail : info@rspv.org | Website : www.rspv.org

ISSN : 3048-6173

अनुक्रमणिका

1.	ठुमक चलत रामचंद्र	प्रो.वैद्य बनवारी लाल गौड डॉ. विश्वावसु गौड	4
2.	श्रीमद्भगवद्गीताः ज्ञान-कर्म-भक्ति की त्रिवेणी	डॉ. कैलाश चन्द्र बुनकर	9
3.	मारवाड़ की लोक-परम्परा में श्रीराम	डॉ. सरोज कौशल	14
4.	डॉ० राधाकृष्णन के शैक्षिक विचारों की आधुनिक भारतीय शिक्षा के परिप्रेक्ष्य में सार्थकता	श्रीमती कविता भारद्वाज	25
5.	ब्रह्माण्डमण्डलपरिज्ञानम्	डॉ. रामदेव साहू	35
6.	शिक्षा दर्शन के विकास में श्रीमद्भगवद् गीता का महत्व	डॉ. सीमा कुण्डारा	40
7.	शिक्षा की वर्तमान स्थिति का अवलोकन	जितेंद्र कुमार शर्मा	44
8.	प्राचीन भारत में गुरुकुल शिक्षा प्रणाली का अध्ययन	डॉ. सुभाष मीना	48
9.	The Use of Multimedia Technology in English Language Teaching	डॉ. मनीषा शर्मा	52

मुद्रण : **कन्ट्रोल पी**, जयपुर - मो. : 9549666600

ISSN : 3048-6173

सम्पादकीय

राजस्थान संस्कृत साहित्य सम्मेलन एवं राजस्थान शिक्षक प्रशिक्षण विद्यापीठ शाहपुराबाग, जयपुर द्वारा श्री श्री 1008 भुवनेश्वरानंद जी महाराज, महंत श्री राम प्रसाद जी महाराज एवं महंत श्री हरिशंकर दास जी वेदांती के शुभाशीर्वाद के परिणामस्वरूप **'शिक्षा कौस्तुभ'** त्रैमासिक शोधपत्रिका के द्वितीय वर्ष का चतुर्थ अंक प्रकाशित किया जा रहा है। 'संस्कृत सुमेरु' विद्वत् - शिरोमणि स्व. पं. मोतीलाल जी जोशी के संकल्प की परिणति के रूप में उनकी शाश्वती प्रेरणा का यह उत्कृष्ट आयाम विज्ञ परामर्शदाताओं के सत्परामर्श से निर्मित करके संपादक मण्डल द्वारा सम्पादित किया जा रहा है।

त्रैमासिक शोध पत्रिका के इस अंक में शिक्षा, संस्कृति एवं ज्ञान-विज्ञान के विषयों पर उत्कृष्ट विद्वानों के लेख-शोधलेख संकलित है। सर्वप्रथम डॉ. विश्वावसु गौड एवं प्रो.वैद्य बनवारी लाल गौड द्वारा लिखित **'ठुमक चलत रामचंद्र'** लेख में भगवान् श्रीराम के बाल स्वरूप तथा एक आदर्श पुरूष के रूप में मानवीय स्वरूप को उजागर किया है। डॉ. कैलाश चन्द्र बुनकर द्वारा लिखित **'श्रीमद्भगवद्गीता: ज्ञान-कर्म-भक्ति की त्रिवेणी'** लेख में श्रीमद् भगवद् गीता के महत्त्व को स्पष्ट कर ज्ञान-कर्म-भक्ति की त्रिवेणी कहा है। तत्पश्चात् डॉ. सरोज कौशल द्वारा लिखित **'मारवाड़ की लोक-परम्परा में श्रीराम'** शोधलेख में राजस्थान में श्रीराम की व्यपकता तथा रामभक्ति विषयक ग्रन्थों के बारे में बताया है। श्रीमती कविता भारद्वाज द्वारा लिखित **'डॉ० राधाकृष्णन के शैक्षिक विचारों की आधुनिक भारतीय शिक्षा के परिप्रेक्ष्य में सार्थकता'** शोधलेख में डॉ सर्वपल्ली राधाकृष्णन् के शैक्षिक विचारों की आधुनिक व वर्तमान भारतीय शिक्षा प्रणाली में उपदेयता तथा मानव जीवन में शिक्षा के महत्त्व का उजागर किया है।

डॉ. रामदेव साहू द्वारा लिखित **'ब्रह्माण्डमण्डलपरिज्ञानम् '** नामक शोधलेख में सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड मण्डल के ज्ञान को प्रदर्शित किया है। तत्पश्चात् डॉ. सीमा कुण्डारा द्वारा लिखित **'शिक्षा दर्शन के विकास में श्रीमद्भगवद् गीता का महत्व'** शोधलेख में शिक्षा दर्शन शास्त्र के विकास में श्रीमद् भगवद् गीता की उपादेयता को बताया है। जितेंद्र कुमार शर्मा द्वारा लिखित **'शिक्षा की वर्तमान स्थिति का अवलोकन'** शोधलेख में भारत की वर्तमान स्थिति तथा भारत की वर्तमान शिक्षा प्रणाली पर प्रकाश डाला है। डॉ. सुभाष मीना द्वारा लिखित **'प्राचीन भारत में गुरुकुल शिक्षा प्रणाली का अध्ययन'** शोधलेख में प्राचीन भारत में गुरुकुल शिक्षा प्रणाली के महत्त्व व अध्ययन पर प्रकाश डाला है। डॉ. मनीषा शर्मा द्वारा लिखित **'The Use of Multimedia Technology in English Language Teaching '** शोधलेख में अंग्रेजी भाषा की शिक्षा नीति में मल्टीमिडिया तकनीक के उपयोग को बताया है।

आशा है, सुधी पाठक इन्हें रुचिपूर्वक हृदयंगम करने हेतु उत्साहशील होंगे।

शुभकामनाओं सहित....

प्रधान संपादक - डॉ. मनीषा शर्मा

ISSN : 3048-6173

ठुमक चलत रामचंद्र

डॉ. विश्वावसु गौड
असिस्टेंट प्रोफेसर,
महात्मा ज्योतिबा फुले आयुर्वेद महाविद्यालय,
हाड़ोता, चौमू, जयपुर (राजस्थान)

राष्ट्रपति-सम्मानित प्रो.वैद्य बनवारी लाल गौड
पूर्व कुलपति
डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन् राजस्थान आयुर्वेद विश्वविद्यालय
जोधपुर

गोस्वामीतुलसीदास जी ने श्रीराम को एक आदर्श पुरुष के रूप में प्रस्तुत किया है। वाल्मीकीय रामायण में "चैत्रेनावमिके तिथौ" कहकर भगवान्श्रीराम का जन्म चैत्र मास की नवमी तिथि को माना है। भारतवर्ष एक सांस्कृतिक देश है जहाँ परम्पराओं को महत्त्व दिया जाता है,परम्परागत रूप से सैंकड़ों वर्षों से भगवान्श्रीराम के जन्म का उत्सव इसी तिथि को मनाते आए हैं|

गोस्वामी तुलसीदास जी ने भगवान्श्रीराम का मानवीय स्वरूप उजागर किया है,भगवान्श्रीराम की बाल सुलभ लीलाएं एक सामान्य मानवीय बालक के द्वारा की जाने वाली क्रीड़ाओं के रूप में वर्णित हैं। प्रारम्भ के इन भावों की अभिव्यक्ति के साथ -साथ उनके सम्पूर्ण जीवन के चरित्र को एक साथ श्रेष्ठ मानव के रूप में चित्रित किया है।उन्होंने भगवान्श्रीराम की असीमित शक्तियों को उनके पृथ्वी पर मानव के रूप में अवतार ले लेने पर सम्पूर्ण रूप से एक मर्यादित मानवस्वरूप में सीमित कर दिया है, यही कारण है कि प्रत्येक व्यक्ति जो सज्जन व्यक्तियों के द्वारा निन्दित नहीं किए जाने वाले स्वरूप को अपनाना चाहता है वहभगवान्श्रीराम के आदर्शों की ओर आकर्षित होता है, उसे भगवान् श्रीराम के नाम में ही श्रद्धा और निष्ठा दिखाई देती है।

गोस्वामी जी ने विष्णु का अवतार स्वीकार करते हुए भी उन्हें सर्वत्र मानवरूप में ही प्रस्तुत किया है, इसलिए भगवान् श्रीराम के चरित्र को मानवीय श्रेष्ठ गुणों का समूह मान लिया है। एक सज्जन पुरुष उनके इस आदर्श स्वरूप का अनुसरण करने का प्रयत्न करने का भाव अपने मन में रखता है वह उनके चरित्र का स्मरण करते हुए ही अपने मानसिक भावों को शुद्ध करने का प्रयत्न करता है।

गुरु-शिष्यपरम्परा के वाहक, परम गुरुभक्त, पितृभक्त भगवान् श्रीराम में वचनबद्धता, मित्रपरायणता, विनम्रता,

ISSN : 3048-6173

शरणागतवत्सलता एवं सहज सहानुभूति के भाव उनके जीवन में अनेक अवसरों पर प्रकट हुए हैं। कृतज्ञ, अनुरागी, हित-मित एवं उपयुक्त वचन बोलने वाले व्यवहारकुशल श्रीराम ने सभी भावों को मानवीय रूप में अपने चरित्र के माध्यम से सम्पूर्ण लोक में प्रकट कर इन भावों को अनुसरण करने योग्य बना दिया है। भगवान्श्रीराम की कुछ विशेषताओं को यहाँ संक्षेप में प्रस्तुत किया जा रहा है-

१. बालस्वरूप-

गोस्वामी तुलसीदास जी ने बालकाण्ड में भगवान्श्रीराम की बालसुलभ क्रीड़ाओं का वर्णन किया है, यह प्रारम्भ है, यथा-

कौशल्या जब बोलन जाई। ठुमुक ठुमुक प्रभु चलहिं पराई।।(बालकाण्ड)

गोस्वामी तुलसीदास जी द्वारावर्णित श्रीराम का यह बालस्वरूप किसी कवि को ऐसा भाया कि उन्होंने पृथक् से इसके लिए एक पद्यात्मक कविता की भी रचना की है, यथा-

ठुमक चलत रामचंद्र बाजत पैंजनिया

किलकि किलकि उठत धाय गिरत भूमि लटपटाय

धायमात गोद लेत दशरथ की रनियां

वर्तमान में यह पद्य भजन के रूप में गोस्वामी तुलसीदास जी के नाम से अत्यधिक प्रचलित है लेकिन विशेषज्ञों का कहना है कि यह तुलसी-साहित्य में कहीं भी नहीं है, अतः इसे उनकी रचना नहीं माना जा सकता, उनके नाम से किसी और ने ही रचना की है।

२. मानवस्वरूप में कुलभूषण-

गोस्वामी जी ने उत्तरकाण्ड तक यथावत् मानवीय स्वरूप के विभिन्न पहलुओं को उजागर करते हुए भगवान्श्रीराम को पूर्णरूपेण आदर्श पुरुष के रूप में प्रस्तुत किया है। उत्तरकाण्ड के अंतिम भाग में भी इन्हें रघुवंश का भूषण कहकर मानवीय स्वरूप ही स्वीकृत किया है,वे कहते हैं कि-

रघुवंश भूषण चरित यह नर कहहिं सुनहिं जे गावहिं।

कलिमल मनोमल धोई बिनु श्रम रामधाम सिधावहिं॥ (उत्तरकाण्ड)

ISSN : 3048-6173

३. मातृभक्ति-

माता कौशल्या को यह भान था कि भगवान्श्रीराम विष्णु का ही अवतार हैं, अतः वे प्रारम्भ में इस स्वरूप में देखने लगी,वे कहती हैं कि-

अस्तुति करि न जाइ भय माना । जगत पिता मैं सुत करि जाना ॥(बालकाण्ड)

अर्थात् मेरे से स्तुति भी नहीं की जाती मैं डर गई कि मैंने जगत् पिता परमात्मा को पुत्र करके जान रखा है। तब भगवान् राम ने उनको समझाया हैकि हे माता! यह बात और कहीं पर भी मत कहना, तब पुनः माता कहती है कि हेभगवन्! आपकी यह माया मेरे मन में कभी व्याप्त न हो और मैं सदा आपको मेरे पुत्र के रूप में ही जानती रहूँ।

यह भगवान्श्रीराम का वह प्रारम्भिक चरित्र है जिसमें उन्होंने अपने आप को मानव के रूप में प्रकट करने का प्राथमिक संदेश अपनी माता के माध्यम से ही दिया है। उन्होंने सम्पूर्ण जीवन माता कौशल्या को यह भान कभी नहीं होने दिया कि वह तुम्हारा पुत्र न होकर एक दैवीय अवतार है, उन्होंने सर्वदा अपने आप को मानव के रूप में ही प्रस्तुत किया।

४. गुरुशिष्य-परम्परा के वाहक-

गुरूग्रह गए पठन रघुराई ।अलपकाल विद्या सब आई ॥(बालकाण्ड)

इस प्रारम्भिक विद्या के बाद विश्वामित्र जी के आश्रम में भी उन्होंने अध्ययन और शास्त्राभ्यास और शस्त्राभ्यास दोनों को समान रूप से निरन्तरता प्रदान की। भगवान्श्रीराम ने वहाँ राक्षसों को मारा और मुनियों से ज्ञान प्राप्त किया, यद्यपि ये सभी ज्ञान उनमें थे फिर भी मानव स्वरूप को प्रकट करते हुए उन्होंने श्रद्धापूर्वक सभी ज्ञान लिए, जैसे-

भगति हेतु बहु कथा पुराना । कहे विप्र जद्यपि प्रभु जाना॥(बालकाण्ड)

आश्रम में रहते हुए भगवान्श्रीराम ने पूर्णतया गुरुभक्ति को प्रकट किया, उनकी आज्ञा के बिना खाना-पीना,शयन करना एवं कहीं जाना कुछ भी नहीं करते थे-

नाथ लखनपुर देखन चहईं । प्रभु सकोच डर प्रगट न कहहीं ॥(बालकाण्ड)

५. पितृभक्ति एवं वचनबद्धता-

मोहि कहु मातुतात दुख कारन। करिअ जतन जेहिं होइ निवारन ॥(बालकाण्ड)

ISSN : 3048-6173

जब सुमंत्र ने भगवान्श्रीराम से वन में निवेदन किया कि महाराज दशरथ ने कहा है कि मैं आपको वन में घुमा कर वापस ले आऊँ, यही वनवास की प्रतिज्ञा पूरी हो जाएगी। तब भगवान्श्रीराम ने कहा कि नहीं मुझे वचन का पूरा पालन करना ही है यदि मैं पालन नहीं करूंगा तो संसार में मेरा अपयश होगा-

मैं सोई धरमु सुलभ करि पावा। तजें तिहूँपुर अपजसु छावा॥ (अयोध्याकाण्ड)

इसलिए आप जाइए और मुझे वचनों का परिपालन करते हुए १४ वर्ष के वनवास का भोग करने दीजिए।

६. शरणागतवत्सलता -

भगवान्श्रीराम के सम्पूर्ण जीवन-चरित्र में शरणागतवत्सलता अनेक स्थलों पर प्रकट हुई है चाहे उसे भक्ति के रूप में हनुमान जी मिले हों या शबरी के आश्रम में जाकर उसके झूठे बेर खाकर उसकी भक्ति को उपकृत किया हो अथवा मित्र के रूप में सुग्रीव को मित्र होते हुए भी शरणागत मानकर उसको किष्किंधा का राजा बनाया हो, इन सभी में शरणागतवत्सलता का भाव दिखाई देता है। सबसे बड़ा उदाहरण विभीषण का है जो उनके परम शत्रु का भाई होते हुए भी उन्होंने उसे न केवल शरण दी अपितु शरणागतवत्सलता के भावों को प्रकट करते हुए लोकव्यवहार में इसे प्रकट भी किया। जब सुग्रीव ने कहा कि वह दशानन का भाई है और हो सकता है कि वह हमारा भेद लेने आया हो इसलिए उसका हमें विश्वास नहीं करना चाहिए तब भगवान्श्रीराम सुग्रीव को कहते हैं कि-

सखा नीति तुम्ह नीकि बिचारी। मम पन सरनागत भयहारी॥ (सुन्दरकाण्ड)

इस शरणागतवत्सलता को प्रकट करते हुए वे कहते भी हैं कि जो मनुष्य अपने अहित का अनुमान करके शरण में आए हुए का त्याग कर देते हैं। वे पामरअर्थात्क्षुद्र (नीच) हैं, पापमय हैं, उन्हें देखने में भी हानि है, इसलिए आप तो ऐसा करो कि, विभीषण को जो कि मेरा शरणागत है, उसको यहाँ ले आओ।

७. मित्रपरायणता-

वनवास के प्रारम्भिक काल में निषाद से नदी पार कराने वाले के रूप में परिचय हुआ और भगवान् ने उसे मित्रता के रूप में परिणत किया, इसी तरह जब रावण ने सीता का हरण कर लिया और भगवान्सीता माता के वियोग में विलाप करते हुए उन्हें ढूँढते हुए जब ऋष्यमूक पर्वत पर आए तो वहाँ पर हनुमान जी से परिचय हुआ और उनके माध्यम से सुग्रीव से मित्रता की, उस मित्रता का भी उन्होंने जीवन भर निर्वाह किया। जब रावण के वध के बाद भगवान्श्रीराम अयोध्या लौटे तो अपने राज्याभिषेक के समय निषादराज, सुग्रीव और विभीषण को मित्रोचित सम्मान देकर सम्पूर्ण लोक को मित्रपरायण होने का संदेश दिया।

ISSN : 3048-6173

८. विनम्रता -

भगवान्श्रीराम ने कदम-कदम पर विनम्रता प्रदर्शित की है, जब धनुष को भंग करने के बाद परशुराम जी भयङ्कर क्रोधित हुए तब भी उन्होंने विनम्रता प्रदर्शित की। वनवास जाते समय माता कौशल्या को ढाढस बँधाते समय और माता कैकेई से वनवास के लिए विदा लेते समय भी विनम्रता को प्रकट किया। वे तब भी विनम्र रहे जब हाथ जोड़कर उपवासपूर्वक पूजा-अर्चना करते हुए समुद्र से मार्ग देने की प्रार्थना की और लक्ष्मण ने स्पष्ट कहा कि इन्हें दण्ड दीजिए ये ऐसे विनम्रता से मानने वाले नहीं है, तब भी भगवान् ने विनम्रता प्रदर्शित करते हुए अपने मर्यादित पुरुषोंचित चरित्र को प्रकट किया। अयोध्या में राज्य करते हुए जब धोबी ने कटु शब्द कहे तब भी भगवान्श्रीराम ने विनम्रता प्रकट की। शक्तिशाली व्यक्ति जब विनम्रता प्रकट करता है तो उसका महत्त्व होता है|

९. दयालुता एवं सहृदयता-

भगवान्श्रीराम अत्यन्त दयालु और कोमल हृदय थे। रावण के द्वारा घायल किए गए जटायु को देखकर वे अत्यंत ही दुखी हुए। उसकी मृत्यु को निकट देखकर वे मानवोचित सहज स्वभाव को प्रकट करते हुए आंखों में आंसू लिए जटायु के प्रति अपनी भावनाएं अभिव्यक्त करते हुए कहते हैं कि आपने अपने कर्म का निर्वाह करते हुए श्रेष्ठ गति पाई है-

जल भरि नयन कहहिं रघुराई। तात कर्म निज तें गति पाई। (अरण्यकाण्ड)

भगवान्श्रीराम आजीवन मानवीय शरीर से सुख-दुःख भोगा, पर अपने दैवीय स्वरूप को अथवा अवतार को कभी भी मानव-भावों पर हावी नहीं होने दिया। वे माता कौशल्या के आंगन में बालसुलभ क्रीड़ाएं करते हैं, विश्वामित्र के आश्रम में रहते हुए राक्षसों का संहार करते हैं तो वीरभाव को प्रकट करते हैं, जनकपुर में सीता से जब वाटिका में केवल आँखों ही आँखों से मिलन होता है तो किंचित्श्रङ्गार भाव भी प्रकट करते हैं। शूर्पणखा को श्रीराम अपने भाई लक्ष्मण की ओर प्रेरित करते हैं तो किञ्चित् हास्यभाव को प्रकट करते हैं, सीता हरण पर फूट-फूट कर रोते हैं तो उनका करुणभाव प्रकट होता है और जब युद्ध में राक्षसों का संहार करते हैं तो उनका रौद्र रूप प्रकट होता है।

अयोध्या में राज्य करते हुए न्यायप्रियता और प्रजावत्सलता के भाव प्रकट करते हैं, इसीलिए एक उत्कृष्ट आदर्श शासक के रूप में अपने आप को संस्थापित करते हुए प्रजा का सर्वथा हित करने वाले भगवान्श्रीराम के राज्यकाल को एक आदर्श मानकर आज भी रामराज्य को सर्वोत्कृष्ट माना जाता है। इस प्रकार से इस संसार में रहते हुए भगवान्श्रीराम ने श्रेष्ठ पुरुष के भावों की कदम-कदम पर अभिव्यक्ति की, इसीलिए उन्हें मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम कहकर सम्पूर्ण मानव-समाज आज भी भावुक और कृतकृत्य होता है।

ISSN : 3048-6173

शिक्षा कौस्तुभ | ▪▪▪■▪▪▪ | त्रैमासिक शोध पत्रिका

श्रीमद्भगवद्गीता: ज्ञान-कर्म-भक्ति की त्रिवेणी

डॉ. कैलाश चन्द्र बुनकर
प्राचार्यः राजकीय लक्ष्मीनाथ शास्त्री संस्कृत
महाविद्यालय चीथवाड़ी (जयपुर)

वसुदेवसुतं देवं कंस चाणूरमर्दनम्।
देवकी परमानन्दं कृष्णं वन्दे जगद् गुरुम्।।

संसार कृष्ण से ही उत्पन्न है, ऐसा मानना ज्ञान है और सब कुछ भगवान् ही हैं, कृष्ण के अलावा कुछ है ही नहीं ऐसा अनुभव हो जाना विज्ञान है। गीता में प्रथम छः अध्याय का षटक कर्म-प्रधान, मध्य का भक्ति-प्रधान और अन्तिम षटक ज्ञान प्रधान माना गया है। भक्ति सर्वगुह्यतम् है, सार तत्व है, अतः उसे कर्म और ज्ञानरूपी दो छिलकों के मध्य में सहेज कर रखा गया है। गीता के समस्त वृतान्तों को देखें तो हमें दो ही मुख्य स्वर सुनाई देते हैं- समता और भक्ति गीता का हृदय है। अतः भक्ति परम गोपनीय है, सर्वश्रेष्ठ है। जैसे बिना आकाश या अधिष्ठान के कोई क्रिया नहीं होती है, ऐसे ही बिना भगवत्कृपा के कोई भी योग, अपनी पूर्णता को प्राप्त नहीं होता। प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप से भक्ति का आश्रय, सभी साधनों में है ही। भक्ति भगवत्कृपा प्रेम, प्रार्थना है। शरणागति, समर्पण और अनन्यता भी भक्ति के ही नाम है तत्व की समग्र अनुभूति भक्ति से सम्भव है (11.54) महात्मा शब्द का प्रयोग भी भगवान् भक्ति में ही करते हैं (7.19, 9.13) ज्ञान व भक्ति पूर्णता एक ही हैं, एक से दूसरा बढ़ता है, बिना ज्ञान और कर्म के भक्ति प्रकट नहीं होती। ज्ञान एवं वैराग्य, भक्ति माँ के पुत्र हैं।

ज्ञान -कर्म-भक्ति की त्रिवेणी:- भगवत् प्राप्ति के अनेक मार्ग हैं, हम अपनी रूचि, स्वभाव और सामर्थ्य के अनुसार उनमें से कोई एक का चयन कर लें, लेकिन दृष्टिकोण समग्र हो किसी एक भाव एक रूप का विधिवत् पूजन हो, लेकिन यही तत्व अन्य रूपों में भी आलोकित हो रहा है, अधिभूत-अधिदेव-अधियज्ञ इन तीनों ही रूपों में एक भगवान् श्रीकृष्ण ही हैं। परा - अपरा सब कुछ यही है, इसी समग्रता को समझाने हेतु भगवान् स्वयं अपनी ओर से, ज्ञान - विज्ञान नामक अध्याय कहना प्रारम्भ करते हैं।

ISSN : 3048-6173

यथाः- **मय्यासक्तमनाः पार्थ योग युजन्मदाश्रयः।**
असंशयं समग्र मां यथा ज्ञास्यति तच्छृणु।। (7.11)

अपि चः- **ज्ञान तेऽहं सविज्ञानमिदं वक्ष्याम्यशेषतः।**
यज्ज्ञात्वा नेह भूयोऽन्यज्ज्ञातव्यमवशिष्यते।। (7.2)

यहाँ भगवान् के आश्रय की बात मुख्य रूप से आई है। अपने प्रियतम भगवान् को छोड़कर दूसरे सभी आश्रयों के त्याग का नाम अनन्यता है। योग युंजन की इतनी आवश्यकता नहीं जितनी भगवान् के अनन्य आश्रय की है- "मेरे तो गिरधर गोपाल दूसरा न कोई"।

योग युंजन अर्थात् योग के अभ्यास से ही ज्यादा आवश्यक है, भगवान् में दृढ विश्वास, श्रद्धा और प्रेम-

"अन्याश्रयणां त्यागोऽनन्यता।।" (नारद भक्ति सूत्र 10)
बिगरी जनम अनेक की सुधरै अवही आजु।
होहि राम को नाम जपु तुलसी तजि कुसमाजु (दोहावली 22)

भगवान को केवल भक्ति ही प्यारी है, वे केवल भक्ति से ही संतुष्ट होते हैं, आचरण, विद्या, आदि गुणों से नहीं:-

व्याधस्याचरण ध्रुवस्य च क्यो विद्या गजेन्द्र का,
जातिर्विदुस्य यादवपतेरूग्रस्य किं पौरुषम्।
कुब्जायाः किमु नाम रूपमधिकं किं तत्सुदाम्नो धनं
भक्तया तुष्यति केवलं न च गुणैर्भक्तिप्रियो माधवः।।

श्री शुकदेव जी के कथनानुसार जिन्होंने पुण्य कीर्ति मुकुन्द मुरारि के पद पल्लव की नौका का आश्रय लिया है, जो सत्पुरूष का सर्वस्व है, उनके लिए यह भवसागर बछड़े के खुर गड्डे के समान है, उन्हें परम पद की प्राप्ति हो जाती है और उनके लिए विपत्तियों का निवास स्थान यह संसार फिर नहीं रहताः-

समाश्रिता ये पदपल्लवप्लवं महत्पदं पुण्ययशो मुरारेः।

भवाम्बुधिर्वत्सपदं परं पदं पदं पदं यद् विपदां न तेषाम् (श्रीमद्भगवत् 10.14.57)

संसार विभिन्न नाम रूप वाला है, लेकिन ज्ञानी उसके पीछे जो मूल तत्व है उसको देखता है। अज्ञानी सोने से बने हुए विभिन्न आभूषणों को देखता है, लेकिन ज्ञानी उसमें जो स्वर्ण तत्व है, उस पर निगाह रखता है। सोने के कितने

ISSN : 3048-6173

गहने है इसको मनुष्य नहीं जान सकता क्योंकि गहनों का अंत नहीं है परन्तु उन सब गहनों में तत्व से एक सोना ही है इसको मनुष्य जान सकता हैः-

निर्गुन रूप सुलभ अति सगुन जान नहिं कोई।
सुगम अगम नाना चरित सुनि मुनि भ्रम होई (मानस 3.73)

संसार में जितने भी जीव जन्तु है, पेड - पौधे, पहाड़ आदि हैं, वे सब एक ही कोशिका से बने है अर्थात् इनका मूल तत्व एक ही है, ऐसा वैज्ञानिकों का आज भी मानना है। यही बात तो भारतीय दर्शन बहुत पहले से कह रहा है, इसलिए इस तत्व के बारे में जानने की विद्या को ही एकाक्षरी विद्या या ब्रह्मविद्या कहते हैं। भक्त भी सम्पूर्ण जगत् को ईश्वर रूप ही देखता है। ज्ञान में द्वैत से अद्वैत तक जाते हैं और भक्ति में रसवर्धन हेतु अद्वैत से फिर द्वैत में जाते हैं।

यथाः- **मनुष्याणां सहस्रेषु कश्चिद्यतति सिद्धये।**
यततामपि सिद्धानां कश्चिन्मां वेत्ति तत्वतः। (7.3)

संसार की हर वस्तु व्यक्ति, परिस्थिति त्रिगुणमयी है। समग्र रूप को जानने के लिए समग्र दृष्टिकोण होना चाहिए, लेकिन अपने मताग्रह के कारण अपने एकांगी दृष्टिकोण को ही परिपूर्ण मान लेते हैं। श्रीकृष्ण के वचनों पर दृढ विश्वास नहीं होने के कारण हम समग्र को जान नहीं पाते-

सब जग ईश्वर रूप है भला-बुरा न कोय।
जैसी जाकी भावना, तैसा ही फल होय।।
जड़ चेतन गुन दोषमय बिश्व कीन्ह करतार।
सन्त हंस गुन गहहिं पय परिहार बारि बिकार (मानस बा .6)

तुलसीदास जी कहते हैं कि मनुष्य किसी न किसी रूप में ममता के बंधन में बंधे है, यदि इस ममता से छूटना असंभव हो, तो फिर यह ममता परमात्मा के साथ रखनी चाहिए और संसार में समता बनायें रखें-

तुलसी ममता राम सों, समता सब संसार।
राग न रोष न दोष दुख, दास भये भव पार। (दोहावली 94)

अपि चः- **एतद्योनीनि भूतानि सर्वाणीत्युपधारय।**
अहं कृत्स्न जगत प्रभवः प्रलयस्तथा। (7.3)

ISSN : 3048-6173

संपूर्ण प्राणियों में एक जीवन शक्ति है, प्राणशक्ति है उसी से ये प्राणी कहलाते हैं। प्राणशक्ति के कारण अच्छी निद्रा में सोया हुआ व्यक्ति और मृत व्यक्ति अलग दिखता है। ये प्राणशक्ति भगवान् ही हैं। सृष्टि की रचना में भगवान् ही कर्ता है, भगवान् ही कारण है भगवान् ही कार्य है अर्थात् सब कुछ वहीं है उनके सिवा कोई अन्य वस्तु है नहीं।

बीज मां सर्वभूतानां विद्धि पार्थ सनातनम्।
बुद्धिर्बुद्धिमतामस्मि तेजस्तेजस्विनामहम्।। (7.10)

अपि चः- **बलं बलवतां चाहं कामरागविवर्जितम्।**
धर्माविरुद्धो भूतेषु कामोऽस्मि भरतर्षभ।। (7.11)

तीनों गुण रूप भावों से मोहित यह सम्पूर्ण जगत् (प्राणिमात्र) इन गुणों से अतीत और अविनाशी मुझे नहीं। जानता। कहा भी गया है-

त्रिभिर्गुणमयैर्भावैरेभिः सर्वमिदं जगत्।
मोहितं नाभिजानाति मानेभ्यः परमव्ययम्।। (7.13)

जिस दिन हमारी दृष्टि, पाप की महत्ता से हटकर, भगवान् की अपार करुणा कृपा पर चली गई, उस दिन पाप-वासना टिकती नहीं और भगवान् मिले बिना रहते नहीं। आदिकाव्य रामायण के रचियता, महर्षि वाल्मीकि पूर्व में रत्नाकर नाम के डाकू थे, जो कि लोगों को मारकर धन लूटा करते थे, लेकिन देवर्षि नारद जी की कृपा से उनके भावों में परिवर्तन हो गया और वे हर्कत से संस्कृत के महान् विद्वान भक्त और आदिकवि बन गए-

चतुर्विधा भजन्ते मां जनाः सुकृतिनोऽर्जुन।
आत जिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षभ।। (7.16)

भगवान का भजन करने वाले चार तरह के भक्त हैं

राम भगति जग चारि प्रकारा सुकृती चारित अनघ उदारा।
चहूँ चतुर कहुँ नाम अधारा ग्यानी प्रभुहि विशेष पिआरा (मानस बा.22)

श्रीमद्भगवत्गीता के अनुसार प्रेमी भक्तों का अनुभव किस तरह का होता है, उनका भजन किस तरह का है, यह बताते हैं। यह गीता की अन्तिम से अन्तिम बात है और किसी भी साधना का सर्वाच्य अनुभव भी यही है-

ISSN : 3048-6173

बहूनां जनमनामन्ते ज्ञानवान्मां प्रपद्यते।
वासुदेव सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः।। (7.19)

भक्तों की चेष्टा (यत्न) के बारे में नारद जी बताते हैं-

लोके वेदेषु तदनुकूलाचरणं तद्विरोधिपूदासीनता (नारद भक्ति सूत्र- 11)
नारायण हरि लग्न में पाँच बात न सुहान, विषय भोग निद्रा हँसी जगत-प्रीत बहुबात।

सारः- सांसारिक कामनाओं से आसक्त मनुष्य अन्य देवताओं की शरण में चले जाते हैं। देवता जो कामना पूर्ति करते हैं वह भी भगवान् से प्राप्त शक्ति से ही करते हैं। देवताओं द्वारा फल नाशवान् ही होता है, किन्तु भगवान् के भक्त उस अविनाशी परमात्मा को प्राप्त होते हैं। मूढ़ मनुष्य भगवान् को नहीं जान पाते हैं किन्तु परमात्मा सभी कालों में होने वाले समस्त प्राणियों को जानते हैं। भगवान् को न जानने वाले जन्म मरण को प्राप्त होते हैं, किन्तु भगवान् में चित्त वाले संपूर्ण ज्ञान को प्राप्त करके, भगवान् को ही प्राप्त होते हैं। इस त्रिगुणमयी माया के पार पाने के एकमात्र उपाय है- केवल और केवल भगवान् की शरण हो जाना। भगवान् अपने शरणागत भक्तों के चार प्रकार (आर्त, जिज्ञासु अर्थार्थी ज्ञानी) बताते हुए कहते हैं- ज्ञानी (प्रेमी) भक्त तो मेरा स्वरूप ही है। हालांकि सब कुछ परमात्मा ही है, ऐसा जानने वाले ज्ञानी भक्त अत्यन्त दुर्लभ होते हैं।

कृष्णाय वासुदेवाय देवकी नन्दनाय च।
नन्दगोप कुमाराय गोविन्दाय नमो नमः। (श्रीमद्भगवत् 1.8.21)

ISSN : 3048-6173

मारवाड़ की लोक-परम्परा में श्रीराम

डॉ. सरोज कौशल
अधिष्ठाता कला, दर्शन एवं समाज-विज्ञान संकाय
एवं प्रोफेसर, संस्कृत-विभाग,
जयनारायण व्यास वि.वि., जोधपुर

राम राम सा! राम तथा राम-भक्ति हमारी भारतीय परम्परा तथा संस्कृति का मेरुदण्ड है। युगों-युगों से लोक-हृदय में बसे हुए राम। भारतीय समाज को सुदीर्घ काल से सम्बल प्रदान करते राम। वाल्मीकि के आदिकाव्य से राम कथा की उपजीव्यता, कवियों तथा साहित्यकारों के आकर्षण-केन्द्र राम। नररूप-नारायण रूप राम। पुरुष-महापुरुष-पुरुषोत्तम-भगवान् रूप राम।

राजस्थान की संस्कृति तथा साहित्य इसका अपवाद नहीं है। अभिवादन-परम्परा से लेकर पर्वों, उत्सवों, अनुष्ठानों, कलाओं, गीतों आदि में रमण करते राम। राजस्थान के मारवाड़ अंचल में रामभक्तिकाव्य की सुदीर्घ एवं सुदृढ़ परम्परा है। कतिपय रचनायें तो ऐसी भी प्राप्त होती हैं, जो आश्रयदाताओं की प्रशस्ति हेतु रची गई थीं, परन्तु उनमें आश्रयदाता की सूर्यवंश-सम्बद्धता का प्रतिपादन करना अपेक्षित था । अतः राम के पूर्व और परवर्ती परम्परा का सामान्य वर्णन कर राम के चरित का विशद निरूपण किया गया।

राजस्थानी कवियों के लिए एक प्रवाद प्रचलित है कि उन्होंने अपने काव्यकला कौशल का प्रदर्शन वीरों की गाथाओं के गान में ही प्रदर्शित किया है किन्तु यह कथन अंशतः ही सत्य है। वस्तुस्थिति तो यह है कि राजस्थान ही वह प्रदेश है कि जहाँ सर्वाधिक संत-सम्प्रदायों का उद्गम हुआ है। जिन चारण कवियों ने अपनी ओजभरी वाणी से वीरों का गान किया उन्होंने ही राम-कृष्ण भक्ति परक विपुल साहित्य की भी सर्जना की।

गोस्वामी तुलसीदास जी के ही समकालीन राजस्थान में कुछ ऐसे भक्त कवि हुए हैं, जिन्होंने भगवान् राम की अनन्त कीर्ति गाई और जन-जन को राम-नाम की महिमा समझाई। इन भक्त कवियों में महात्मा ईसरदास जी बारहट, अलूजी कविया, माधौदास जी दधवाड़िया एवं केशवदासजी गडण के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। इनके पूर्ववर्ती एवं

ISSN : 3048-6173

परवर्ती अन्य चारण भक्त कवियों में मांडणजी देवल, नरहरिदास बारहट, सन्तदास जी खिड़िया, तेजसी बारहट, ब्रह्मदास जी बीठू आदि प्रमुख हैं।

भक्तवर महात्मा ईसरदास जी बारहट एवं अलूजी कविया की मान्यता है कि स्वयं राम से बढ़कर उसके नाम में शक्ति है। साधनहीन समाज के लिए ढोंग और ढकोसलों से कोसों दूर तथा प्रेमरस से परिपूर्ण राम-नाम का जप ही सच्चा तीर्थ और तप है। महात्मा ईसरदासजी कृत 'हरिरस' के दोहों की सार्थकता द्रष्टव्य है -

राम जपंतां रे रिदा, आळस म कर अजांण।
जो तूं गुण जांणै नहीं, (तौ) पूछे वेद पुरांण।।
राम भणे भण राम भण, अवरां राम भणाय।
जा मुख रांम न उच्चरै ता मुख लोह जड़ाय।।

रामभक्ति के मधुर रस से परिपूर्ण इन दोहों के रचयिता भक्त कवि को राजस्थान और गुजरात की जनता ने 'ईसरा-परमेसरा' कहकर सम्मानित किया और उनका अमर ग्रन्थ 'हरिरस' आज भी मोक्ष-प्राप्ति हेतु जन-जन को सुनाया जाता है। ईसरदास जी के समान महात्मा अलूजी कविया ने भी साधनहीन जनता को आडम्बरों की अवहेलना करने का संदेश दिया। योग-साधना और गूढ़-तत्त्वों की अभिव्यंजना करने वाले सैंकड़ों छप्पय छन्दों में महात्मा अलूजी ने राम-नाम को सर्वोत्तम मानते हुए सांसारिक भव-बाधाओं के निवारणार्थ रामबाण रूपी औषधि का महत्त्व प्रतिपादित किया। लाखों की संख्या में भी यदि यज्ञ, दान, व्रत, अनुष्ठान आदि किये जायें तब भी राम नाम के आधे के आधे और उसके भी अर्धभाग की शक्ति के समतुल्य नहीं हो सकते -

लाख जिग्ग राजसू, लाख असमेध कीजे।
लाख भार सोब्रन्न लाख कन्यावळ लीजे।
लाख गऊ सोवच्छ, लाख महकी दूजंती।
लाख सरोवर बंध, लाख वापी कीजंती।
एतला लाख एकठ करौ, अवर धरम कीजे सही।
आधले आध, आधले अलू राम नाम पूगसि नहीं।।

इन कवियों ने राम-नाम की महिमा का भी लोक भाषा में सुन्दर निरूपण किया है और कविता के सौन्दर्य को भी नैसर्गिक रूप से प्रकट किया है। महिमामय एवं सर्वसिद्धिप्रद राम-नाम के स्वरूप का पूर्ण ज्ञान हो जाने के पश्चात् भक्त-

ISSN : 3048-6173

हृदय को ऐसा आनन्द अनुभव होता है, मानो मयूर अथवा दर्दुर को मेघ-वृष्टि, मत्स्य को नीर, शरीर बन्धन टूटते हुए अफीमची को अफीम, भूखे को मिष्ठान्न एवं रंक को बहुमूल्य रत्न प्राप्त हो गए हों -

जिम मोरां दद्दरा, सघण घण पावस बूठै।
जळ बीछड़िये मच्छ, वळे जळ जाय पइट्ठै।
तन बंधण तूटतां अमल बायड़िये लद्धौ।
खीर खंड घ्रत सहित, घण खुधियारथ खद्धौ।
आणंद हुवौ मन माहरै, जीव तणौ पायौ जतन।
राम रौ नाम मिळयौ अलू, रंक हाथ चढ़ियौ रतन।।

राम-भक्ति-विषयक अनेक राजस्थानी प्रबन्ध रचे गये हैं, जिनमें मंछाराम सेवग कृत 'रघुनाथ रूपक' एवं किसना आढ़ा कृत 'रघुवर-जस-प्रकास' तो राम की महिमा गाने के साथ-साथ राजस्थानी काव्य-शास्त्र के श्रेष्ठ रीतिग्रन्थ भी हैं।

राजस्थानी का प्रथम आख्यान काव्य : मेहोजी गोदारा कृत 'रामायण' अवधान नाममाला में खरा सोना कहा गया है। मेहोजीकृत रामायण में कुल 261 दोहे व चौपाइयाँ हैं। इनका आधार वाल्मीकि रामायण के अतिरिक्त लोक-परम्परा रहा है। मेहा रामायण की नई उद्भावनायें ही इसे दुनिया की अन्य रामायणों से पृथक् करती है।

मेहोजी कृत रामायण में उक्त नवीन उद्भावनाओं के साथ ही कथोपकथनों का सौन्दर्य अनुपम है। इसमें कैकेयी-दशरथ, सीता-भोज, भोज-रावण, रावण-ज्योतिषी, रावण-लक्ष्मण, राम-हनुमान्, मन्दोदरी-सीता विभीषण-रावण आदि सम्वादों ने इसे नाटकीय गुणों से सबल और समर्थ बना दिया है।

इस रामकाव्य में राजस्थान की कृषि संस्कृति अपने विराट रूप में प्रकट होती है। सीता हरण के प्रसंग में सीता को बूटे पर पड़ी कम्बल बताना -

बूटै उपरि काम्बळी, जे कोई लियै उठाय, कवि कहता है कि यदि सीता का हरण न हुआ होता तो सीता का सतीत्व, लक्ष्मण का जतीत्व और हनुमान जी का वीरत्व धरा ही रह जाता-

सत सीता, जत लखमणां, सबळाई हणमंत।
जे आ सीत न जावही, अै गुण मांहि गळंत।।

ISSN : 3048-6173

काव्यरूढ़ियाँ और संतवाणी का प्रभाव भी इसमें पदे-पदे प्रकट होता है। इसमें संगीत के गेय तत्त्वों का समायोजन भी इसे विशिष्ट बनाता है। लौकिक छंदों एवं राग-रागिनियों का प्राधान्य भी इसमें प्राप्त होता है। इसमें प्रयुक्त संगीत और राग-रागिनियों का ही प्रभाव है कि इस काव्य के छंद जागरण-जम्भों में भी सुमधुर स्वर-लहरियों में सुनने को मिलते हैं।

माधवदास दधवाड़िया कृत 'रामरासौ' ग्रंथ भक्ति एवं रीति के संगम स्थल पर स्थित है। रामरासौ यह प्रमाणित करता है कि एकान्त अरण्यों, आश्रमों, सम्प्रदायों में बैठकर 'स्वान्तःसुखाय' भक्ति काव्य रचना केवल भक्तों एवं संतों का ही काम नहीं था, वरन् यह राजदरबारों में उन चारणों द्वारा भी लिखा जाता था जिन्हें परम्परा दरबारों में बैठकर राज-समुदाय का प्रशस्ति गायक मानती आई है। 16वीं शताब्दी से पूर्व डिंगल और पिंगल में चरित लेखन के लिए रासो जैसे काव्यरूप रहे होंगे। ये काव्यरूप तत्कालीन कवियों के लिए आदर्शरूप थे। माधवदास दधवाड़िया को भी राजा राम के चरितगान के लिए यह 'रासो' काव्यरूप ही सर्वाधिक उपयुक्त लगा होगा।

रामरासौ की जिन चार पाण्डुलिपियों का उल्लेख इस ग्रन्थ के सम्पादक शुभकरण देवल ने ग्रंथ की भूमिका में किया है, वे रामरासौ के विविध पाठक वर्ग को प्रदर्शित करते हैं। रामरासौ उदयपुर के महाराणा जगतसिंह के राजपण्डित के पुत्रों की शिक्षार्थ रचा गया। दादूपंथ में इसकी पठन-परम्परा का समृद्ध इतिहास है।

1. राजदरबारों में इसका पठन इसलिये किया जाता रहा कि यह राजा राम के आदर्श चरित्र को उनके मन-मस्तिष्क में स्थापित करता है।

2. यह ग्रन्थ एक प्रबन्ध काव्य है जिसमें संस्कृत की प्रतिष्ठित प्रबन्ध काव्य-परम्परा के समस्त गुण हैं, जो कि कवि-शिक्षा के लिए उपयोगी हो सकते हैं।

3. दादूपंथ में इसका सार्वजनिक पठन इसलिए किया जाता होगा कि यह रामचरित के माध्यम से भक्ति की प्रतिष्ठा करवाता है।

4. ढूंढाड़ और बीकानेर क्षेत्रों में इस ग्रन्थ को पठनार्थ प्रसारित करना यह दर्शाता है कि रामचरितमानस की तरह यह ग्रंथ भी एक धर्मग्रंथ का रूप ले चुका था।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल की यह प्रस्थापना है कि एक सफल प्रबंधकार वह होता है जो मार्मिक प्रसंगों को सफलतापूर्वक निर्वाह कर लेता है। इसी मापदण्ड पर उन्होंने तुलसी की भूरि-भूरि प्रशंसा की है। कवि माधवदास भी मार्मिक प्रसंगों के निर्वाह में अद्वितीय प्रतीत होते हैं।

ISSN : 3048-6173

रामवनगमन का उदाहरण द्रष्टव्य है -

रोगी व्रिध बालक रहे। प्रजा अंन संगि प्रखि।
हाहाकार पुकार हुव। रांम विजोग निरख्खि।।
प्रजा सहित वासुर प्रथंम। आथंमियां दुणियंद।।
राघव नदि तमसा रहे। चंहु कोसे रघुचंद।।
सूती परजा अरध निसि। राम संजोये रथ्थ।
उत्तर पंथ खड़ी कोस इक। पेरे दक्खिणं पथ्थ।।

राम के वियोग में अयोध्या में सर्वत्र कोहराम मच गया। रोगी, वृद्ध एवं बालकों के अतिरिक्त सभी नगरवासी श्रीराम के रथ के अनुगामी हो गये। प्रजाजनों के राम के प्रति मोह के कारण उत्पन्न करुण दृश्य अत्यन्त मार्मिक हो गया।

रासो ग्रन्थों में नवरसों का समाहार करना रासोकारों का प्रथम उद्देश्य हो गया था। चंदबरदाई ने स्वयं पृथ्वीराजरासो के अन्त में कहा -

रासो अलंभ नवरस सरस। चंद छंद कियअमिय सम।
श्रंगार वीर करुना बिभक्त। भय अद्भुत हसंत सम।।

रासो काव्यों में नवरसों के समाहार का जो उद्देश्य चंदबरदाई ने स्थापित किया था वह अन्ततः श्रंगार और वीर में ही पर्यवसित हो गया था। ऐसे में भक्ति को उनके समकक्ष स्थापित करने का युगान्तरकारी कार्य माधवदास ने किया और पूरी रासोपरम्परा में एक नूतन अध्याय संयोजित किया।

इसी परम्परा में सुरजनदास पूनिया रचित रामरासौ भी उल्लेखनीय है। इनकी काव्यकृति को 'लोकपरम्पराओं से अनुप्राणित अनुपम कृति तथा कवित्तरचना में तो इसे बिना मुकुट का एकछत्र सम्राट् भी कहा गया है।'

सुरजनदास पूनिया का भाषिक सौन्दर्य भी अनुकरणीय है। मुहावरों तथा लोकोक्तियों के प्रयोग में कवि सिद्धहस्त है। 'लीक लीपना', 'पहाड़ सरकना', 'जम री घात' आदि अनेक ऐसे प्रयोग हैं -

वीढे राण श्रीराम करे जुग तीन्य कहाणी।
रह्या दूध का दूध गया पाणी का पाणी।।
जिसो कमायो जीव, जीव तिसड़ो फळ पायो।

ISSN : 3048-6173

कवि के शब्दप्रयोग तीर के समान लक्ष्यभेद करते हैं। उनके काव्य में मरुभाषा की आत्मा का निर्मल रूप प्रतिबिम्बित होता है।

'राजस्थानी लोकरामायण सीतपुराण' को आज भी जसनाथी लोक-गायकों द्वारा नगाड़े पर, नायकों द्वारा 'माटों' पर तथा नायिकाओं द्वारा रतजगे में चूरू-बीकानेर अंचल में भावभक्तिपूर्वक गाकर सुनाया जाता है। कतिपय नवीन उद्भावनाओं के कारण इस गाथा का अस्तित्व भी अनूठा ही है। इसके कवि सरवण भूकर हैं।

'सीतपुराण' की कथा 244 दोहों में पूर्ण होती है। सीतपुराण सुनने से धर्म की वृद्धि और पापों का नाश होता है -

इण कथा रा अै ही भेव, हम तम जपो नारायण देव।
सीतपुराण सुणै चित लाय, बधै धरम, पाप खै जाय।।

सीतपुराण में सीता के सौन्दर्य को प्रदर्शित करने वाला पद्य द्रष्टव्य है -

सीस नारेळ ज्यूं कापिया गात।
कापिया गात ज्यूँ सोनै रा पात।
सोनै रै पात ज्यूँ बोलती रिल।
बोलती रिल ज्यूँ बाजती बिल।
चालती आंगणै चमकतो चीर।
सीत कांई बिसरावे लिछमण बीर।।

'सीतपुराण' में आभाणकों में लोक समाया हुआ है। 'राजा ओ वाचा खारा नींब सा, नींब न मीठा होय। कोटां नैं सोवे कांगरा, भींता नै सोवै चीत'। और 'अमी बसै गवरांरै नख में' जैसी उक्तियों ने इस कृति में चार चाँद लगा दिये हैं।

राम भक्त कवि पर्दायत तुलछराय के राम-विषयक पद विशेषणरूपेण रेखाङ्करणीय हैं। शब्द और स्वर के अनन्य आराधक राजस्थान राजा मानसिंह का रनिवास भी विदुषी, विद्यानुरागिणी तथा भक्ति-भाव-सम्पन्न कविरानियों से सुशोभित था, जिनकी सरस काव्य-वीणा की झंकार रसज्ञ भक्तजनों की हृदयतंत्री को झंकृत करने में समर्थ थी। वे अपने पदों में सरस्वती, रघुवर सियावर, रघुराम आदि की वन्दना करती हैं।

सुरसति सुण मेरी माय, महर कर मो परै।
हरिजस लेऊँ बणाय, नेम है तौ परै।।
तुम बिन पार न होय, देव सब ही कहै।

ISSN : 3048-6173

तातै हुय किरपाल, अरज मेरी सुण लहै।।
रघुवर के गुण गाय, पार भव सै तिरूँ।
इत उत भटकै कौन, सफल तन मैं करूँ।।

वे अपने पदों में केवल राम की अथवा अन्य किसी देवता की स्तुति अथवा भक्ति नहीं करतीं ..... राजा राम को भी कर्तव्य का उपदेश करती हैं -

परजा की खबर लीजै, भक्तन को दरस दीजै।
सौं निरख के मुखारबिंद, प्रेम नैण भीजै।

प्रकारान्तर से तुलसराय भक्त की जीवनचर्या को भी निर्दिष्ट करती हैं -

अब मोयै दरसण देवौ रघुराम।
असट पेहर तुमही कुं ध्याऊँ,
करियै पूरण काम।।
और बात पै चित्त नहीं राखूँ,
जपत रहूँ तुव नाम।
तुलछराय पर निज किरपा कर,
आंण मिलौ हो घनसांम।।

यह पद रघुराम से प्रारम्भ होकर घनश्याम पर समाप्त होता है। इससे यह ज्ञात होता है कि तुलछराय की दृष्टि में रघुराम तथा घनश्याम में कोई भेद नहीं है। चाहे कृष्ण कहो या राम-तत्त्व का ऐक्य इन सभी सन्तों की वैचारिकी अथवा भक्ति का निष्कर्ष है। राम के नाम से प्रारम्भ हुए पद को वे माधव में पर्यवसित कर देती हैं। अनेक नवाचार करते हुए सुन्दरपदों की रचना से तुलछराय ने भक्ति तथा दर्शन का सुन्दर समन्वय किया है।

श्रीमंत कुमार व्यास द्वारा कैकयी चरित्र को केन्द्र में रखकर एक छः सर्गों का प्रबन्ध काव्य रचा गया। आधुनिक काल में कैकेयी का पुनः मूल्यांकन अनेक कवियों द्वारा किया गया। हिन्दी काव्य-परम्परा में 'साकेत' एक ऐसी ही कड़ी है। मैथिलीशरणगुप्त ने मनोवैज्ञानिक सत्य का सहारा लेते हुए अपराधी नारी की मनोदशा का चित्रण सम्वेदना के स्तर पर किया है।

कवि के प्रबन्ध काव्यों में 'रामदूत', कैकेयी, द्रौपदी, मीरा आदि उल्लेखनीय हैं। उन्होंने 'कैकयी' काव्य के

ISSN : 3048-6173

सन्दर्भ में यह भूमिका लेखन किया कि यदि कैकेयी नहीं होती तो राम का नाम कैसे विख्यात होता? वाल्मीकि तथा तुलसीदास के काव्यों की रचना किस प्रकार होती? सीता का हरण तथा रावण का मरण नहीं होता। कैकेयी की यह ख्यात कितनी सबल है, इसका मूल्यांकन कीजिए।

कैकेयी यह विचार करती है कि राम को राज्य मिलने से उसका कल्याण नहीं है। श्रवण की मृत्यु राजा के हाथ से होने पर उसे पुत्र वियोग में तड़प-तड़प कर मरने के शाप की याद से वह सिहर उठती है। सोचती है पुत्र राम का वियोग होने पर मात्र राजा का ही देहान्त होगा। अब नियति का चक्र चलेगा। राम ने विश्वशान्ति की चौदह वर्षीय योजना बना रखी है। मुझे उसे कार्यान्वित करना है। मुझे राम को जग मंगल हेतु बचाने के लिए बलि देनी होगी। किन्तु इस रहस्य को मैं खोल कर नहीं रख सकती। भले ही मेरी तथा भरत की अपकीर्ति हो। मेरे कठोर होने से राम की मृत्यु टल सकती है। मेरे दो वरदान जो दशरथ जी के पास थाती हैं मैं उन्हें माँगकर कल्याण करती हूँ।

इण खातर बदनाम धरा पर कैकयी अब होवैली।
बल बुधो चतराई अपणी सणळो खुद खोवैली।
आखी दुनिया दासी मंथरा नै ही धण सेवैली।
रामपूत बचावण कैकयी आप बळी देवैली।।
मत मानो कोई भी चायै प्यारो राम बचाणो।
भरत लाल नै पड़ी पड़े तो सहणो सह हरजाणो।।
कुळगरू परजा कुटम कबीलो पड़ज्या भळै गमाणो।।
कुळगरू परजा कुटम कबीलो पड़ज्या भळै गमाणो।
चिंता कोनी कैकयी द्रिढ़ है आछो की कर जाणो।

कवि ने कैकेयी को लोक कल्याणकारी स्वरूप में प्रकट कर उसे महान् बना दिया और एक नई दृष्टि दी है।

थूं है निरमळ नीर जियां गंगा रो पावन पाणी।
जुगां जुगां थूं अमर रवैली कैकयी मां कल्याणी।।

छठे सर्ग में अयोध्या के पूर्ण विकास के लिए कैकयी राम के साथ मंत्रणा कर रामराज्य की योजना की क्रियान्विति में अपना जीवन समर्पित कर देती है -

राम राज रै म्हैल नींव रो कैकयी सुन्दर भाटो बणगी।

ISSN : 3048-6173

राज सिंघासण रो मजबूत मनोहर कैकयी पायो बणगी।
जगजननी अम्बा कल्याणी रामपूत रो सायो बणगी।
रामचरित मानस में वा तो राम राज मनचायो बणगी।।

कवि के इस काव्य में भास के प्रतिमा नाटक की छाया परिलक्षित होती है। 'प्रतिमा' के छठे अंक में भास ने कैकेयी के चरित्र को उदात्त रूप में स्थापित करने के प्रयास में सुमंत्र से भरत को कहलाया है कि अंधमुनि के शाप के कारण उसने राम के वनवास की व्यवस्था की।

कवि का सादृश्य विधान अनूठा है। कवि ने लोक-जीवन से अनूठे उपमान चुने हैं। राजस्थानी भाषा का अखण्ड प्रवाह आद्योपान्त दर्शनीय है। कवि ने कैकेयी की छवि नई और मौलिक सोच के साथ प्रस्तुति की है। उन्होंने कैकेयी को एक कल्याणकारी रूप में प्रस्तुत करना सामयिक आवश्यकता माना है।

राजस्थान एक ऐसा प्रदेश है जहाँ रामचरित की कई रूपों में प्रस्तुति दृष्टिगोचर होती है। पदे-पदे राम का स्मरण यहाँ के लोक-जीवन का अटूट मनोरथ है। यहाँ अनेक ऐसे स्थल हैं जो राम और सीता सहित उनके परिवार के सदस्यों की स्थायी स्मृति को संजोकर रखे हुए हैं। बारां का सीताबाड़ी मेला और प्रतापगढ़ का सीतामाता स्थल वन देवी के रूप में सीता के प्रवास के लिए प्रसिद्धि हैं, लव-कुश भी यहीं जन्मे।

1. उदयपुर के कमलनाथ महादेव के लिए यह प्रसिद्धि है कि रावण ने अपना शीश-कमल चढ़ाकर यहाँ महादेव की आराधना की थी।

2. आबू में वशिष्ठ ऋषि का आश्रम था।

3. जोधपुर के मण्डोर में मन्दोदरी का पीहर रहा।

4. रामदेवरा में राम के बाण से जलधारा फूटी।

5. लोकदेवता पाबूजी को लक्ष्मण का अवतार कहा जाता है।

6. जुरहरा की रामलीला अपने प्रकार की अनूठी लीला कही जाती है जिसमें पूरा जुरहरा गाँव और वहाँ के निवासी रामजीवन से जुड़े प्रसंगों के प्रतीक बने दिखाई देते हैं। राम की सवारी पूरे गाँव में निकाली जाती है तब पूरा गाँव अयोध्या और जुरहरा निवासी अयोध्या निवासी के रूप में भाग लेते हैं।

संवादों में कहावत-मुहावरे के रूप में हास-परिहास की शैली में समग्र रामचरित का निकष ऐसे भी निरूपित

ISSN : 3048-6173

किया जाता रहा है -

''एक हो रावण ने एक हो राम
वो लेइग्यो वंडी लुगाई।
वणी खोस्यो वंडो गाम।
वात री वात ने वात री वईगी वातुनिया।
तुलसी जस्या कवियाँ ने भरदीनी कई पोथनिया।''

राजस्थानी लोककाव्य में विविध छन्दों में रामजीवन के विविध प्रसंग, विविध अवसरों पर अनेक शैलियों में गाये जाते हैं। रामजन्म के आनन्द का प्रसँ, बधाइयाँ और नेगचार के सुन्दर प्रसंग वर्णित कर कवियों ने लोक-व्यवहार और रामकथा को गुम्फित कर दिया है।

दाई नालच्छेदन के दस्तूर पर इनाम की याचना करती है। ननद ने नवजात को दूध से स्नान कराया तो वह इसका भी नेगचार माँगती है -

''सिरी रामचन्दरजी जनम लिया है
नणद आवे दुद्धी धुलावे
दुद्धि धुलाई माँगे
बौडर की साड़ी उनको दीजै
लल्ला की बधाई
सिरी.....''

ऐसे सर्वगुणसम्पन्न दशरथनन्दन राम भारतीय लोकजीवन में सर्वतोभावेन व्याप्त आदर्श के रूप में परिव्याप्त हैं। राम विवाह के उपरान्त जब सीता जी के साथ आगमन करते हैं तो उनकी युगल छवि का ऐसा भाव होता है कि भारतीय समाज और किसी को अपना आदर्श स्वीकार नहीं करता।

अतः हमारी संस्कृति के लिए राम और सीता ही आदर्श प्रतीक, आदर्श मिथक और आदर्श अन्तःचेतना बने हुए हैं। यही कारण है कि भारत के किसी कोने, किसी जाति-बिरादरी में जन्म लेने वाला शिशु राम की उपमा लिये जन्म लेता है तथा हर बालिका सीता सी गुणवन्ती प्रतीत होती है। विवाह में - 'बन्नो तो म्हारो रामचन्द्र अवतार बन्नी तो म्हारी सीता जानकी' सर्वत्र गूँजता हुआ मिलता है। राम और सीता दोनों ऐसे आदर्श सेतु हैं जो भारतीय गृहस्थ जीवन

ISSN : 3048-6173

के समतामूलक समाज की रचना करते हुए नर-नारी को एक सूत्र में बाँधे रखते हैं।

1. लोक में राम और जुरहरा की रामलीला : डॉ. जीवन सिंह

इसमें डेढ़ शताब्दी से भी अधिक समय से जुरहरा में होने वाली रामलीला का दस्तावेजीकरण है। इस रामलीला ने वहाँ साधारणता और सामूहिकता की भावना को ऊर्जस्विता प्रदान की है। जुरहरा राजस्थान के भरतपुर जिले का सीमावर्ती गाँव है जो अब बड़े कस्बे का रूप ले चुका है। यह राजस्थान, हरियाणा और उत्तरप्रदेश की सीमाओं के मध्य स्थित है।

2. कैकयी - श्रीमंत कुमार व्यास, राजस्थानी ग्रंथागार, जोधपुर
3. रघुवरजसप्रकास, (सं. सीताराम लालस) चारणकवि किशनाजी
4. रघुनाथ रूपक गीताँ रो - मनसाराम सेवग
5. सीतपुराण - सरवण भूकर
6. मेहोजीकृत रामायण - डॉ. हीरालाल माहेश्वरी
7. रामरासौ - सं. शुभकरण देवल, साहित्य अकादमी, नई दिल्ली, 2005
8. राजस्थानी काव्य में रामकथा - डॉ. मदन सैनी, कथाराज प्रकाशन, श्रीडूंगरगढ़
9. रघुनाथ रूपक : सं. महताबचन्द खारैड़, साहित्य अकादमी, नई दिल्ली।
10. भारतीय भाषाओं में रामकथा : राजस्थानी भाषा, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2016

सन्दर्भ -

मेहा रामायण - सं. श्याम महर्षि, राष्ट्रभाषा हिन्दी प्रचार समिति, श्रीडूंगरगढ़
भूमिका भाग, पृ.सं. 40, रामरासौ-सम्पादक शुभकरण देवल
राजस्थानी रामायण (रामरासौ) पृ. 41, पद 92
ग्रं. 205 : राम पदावली : प्रतापकंवर : पत्र 40
ग्रं. 205 : राम पदावली : प्रतापकंवर : पत्र 116
कैकेयी - श्रीमन्तकुमारव्यास, राजस्थानी ग्रन्थागार, जोधपुर, द्वितीय संस्करण।

ISSN : 3048-6173

शिक्षा कौस्तुभ | ▪▪▪■▪▪▪ | त्रैमासिक शोध पत्रिका

डॉ० राधाकृष्णन के शैक्षिक विचारों की आधुनिक भारतीय शिक्षा के परिप्रेक्ष्य में सार्थकता

श्रीमती कविता भारद्वाज
सहायक आचार्य
राजस्थान शिक्षक प्रशिक्षण विद्यापीठ, शाहपुरा बाग, जयपुर

सारांश

डॉ. राधाकृष्णन् शिक्षा को व्यक्ति के शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक एवं आत्मिक विकास की प्रक्रिया मानते है तथा शिक्षा को ऐसा साधन मानते हैं जो व्यक्ति तथा समाज को प्रगति देता है एवं विकास को गति प्रदान करता है। डॉ. राधाकृष्णन् मानते हैं कि ज्ञान व्यक्ति के अन्दर निहित है। वह स्वभावः आत्मबोध करने में समर्थ है किन्तु बाह्य विषयों की आसक्ति से व्यक्ति का आत्म तत्व कलुषित रहता है। यही कारण है कि मनुष्य सर्वदा समीपस्थ होने पर भी उस आत्म तत्व का प्रस्तुत शोध पत्र डॉ० राधाकृष्णन् के शैक्षिक विचारों की आधुनिक भारतीय शिक्षा के परिप्रेक्ष्य में सार्थकता पर आधारित है। डॉ. राधाकृष्णन् ने छात्र संकल्पना, शिक्षक संकल्पना, छात्र-शिक्षक संबंध, सामान्य शिक्षा, उदार शिक्षा, व्यवसायिक शिक्षा, अध्यापकों की शिक्षा, धार्मिक शिक्षा, स्त्री शिक्षा, विश्वविद्यालयी शिक्षा व्यवस्था के संदर्भ में अपने महत्वपूर्ण विचार प्रस्तुत किये। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग क अध्यक्ष के रूप में उन्होंने विश्वविद्यालय शिक्षा के विभिन्न पक्षों का अध्ययन किया। डॉ. राधाकृष्णन् ने न केवल शैक्षिक सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया बल्कि उसे वास्तविक शैक्षिक परिस्थितियों में भी व्यवहृत किया। उन्होंने व्यावहारिक परिस्थितियों में शिक्षण करके अपने शैक्षिक विचारों का निर्माण किया। डॉ. राधाकृष्णन् के स्वतन्त्रता संबंधी विचारों में व्यक्तिवाद तथा आदर्श दोनो का सम्मिश्रण मिलता है। उन्हां ने कहा कि किसी देश की शैक्षिक, राजनैतिक, सामाजिक चेतना उस देश के विश्वविद्यालय की श्रेष्ठता के अभिन्न होते हैं। श्रेष्ठ मानव समाज में ही एक उन्नत राष्ट्र एवं समृद्ध तथा शान्तिमय विश्व की कल्पना निहित है। डॉ. राधाकृष्णन् शिक्षा व ज्ञान को एक-दूसरे का पर्याय मानते हैं तथा शिक्षा को विकास के एक साधन के रूप में स्वीकार करते हैं। इनके अनुसार शिक्षा शाश्वत् जीवन की प्राप्ति का माध्यम है। शिक्षा के द्वारा

ISSN : 3048-6173

नैतिक विकास सम्भव है तथा शिक्षा ही आत्म विकास करने का एक सबल साधन है। शिक्षा के द्वारा ही समाज में सामाजिक-आर्थिक परिवर्तन लाये जा सकते है।

इस प्रकार, हम देखते है कि डॉ. राधाकृष्णन् के अनुसार शिक्षा का महत्वपूर्ण आधार आध्यात्मवाद है। मनुष्यों को अपने आध्यात्मिक विकास के लिये अवश्य ही शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये। आधुनिक युग में भौतिकवाद का प्राधान्य होने से शिक्षा को भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति का साधन माना जाता है। अतः आज की शिक्षा का स्वरूप भौतिक होता जा रहा है। ऐसी स्थिति मे यदि कहा जाये कि डॉ. राधाकृष्णन की शिक्षा का अब कोई औचित्य नहीं रह जाता है तो यह ठीक नहीं हैं क्यो कि आध्यात्मिकता का महत्व किसी भी युग मे सर्वथा समाप्त नहीं होता है। जीवन मूल्यों के निर्धारण में आध्यात्मिक दर्शन के महत्व को डॉ. राधाकृष्णन् स्वीकार करते हुये कहते है कि मानव जीवन में जो वर्तमान संकटपूर्ण स्थिति उत्पन्न हुई है, उसका कारण यह है कि मानव चेतना में आपातकाल उपस्थित हो गया है, संगठित एवं पूर्ण जीवन में न्यूनता आ गई है। लोगों की ऐसी प्रवृति हो गई है कि वे आध्यात्मिकता की उपेक्षा कर रहे हैं।

मुख्य शब्दावली:- दर्शनशास्त्र, शिक्षा, संप्रत्य, आत्म-ज्ञान, धर्म, शैक्षिक विचार, चरित्र निर्माण।

प्रस्तावना

किसी विचार या योजना की सुसंगतता या प्रासंगिकता या सार्थकता उसकी पुष्टिकरण की शक्ति को प्रदर्शित करती है। वस्तुतः परिवर्तनशील जगत् में विचारों मे परिवर्तन आना स्वाभाविक है, क्यो कि परिवर्तन प्रकृति का नियम है। मानव स्वभाव भी परविर्तनशील है। अतः सार्थकता या उपादेयता विचारों को अर्थपूर्ण एवं प्रयोजनशील बनाती हैं। वस्तुतः शिक्षा सामाजिक तथा आर्थिक परिवर्तन का प्रमुख साधन होने के नाते समाज के रूपान्तरण का शक्तिशाली माध्यम है। उक्त कथन की पुष्टि मे हम यूनेस्को के प्रतिवेदन (1978) के निम्न शब्दों को प्रस्तुत कर रहे हैं

"शिक्षा स्वयं में एक विश्व भी है और विशाल विश्व का एक प्रतिबिम्ब भी है। अपने उद्देश्यों में योगदान करते हुए वह समाज के अधीन होती है, और विशेष रूप में वह यह सुनिश्चित करके कि अपेक्षित मानवीय संसाधनों का विकास होता है, समाज को अपनी उत्पादक शक्तियों के जुटाने मे सहायता देती है। सामान्य रूप से यह कहा जा सकता है कि उसका उन पर्यावरणात्मक स्थितियों पर, जिनके अधीन वह रहती है, आवश्यक रूप से प्रभाव पड़ता है भले ही यह प्रभाव केवल उन व्यक्तियों के ज्ञान के द्वारा हो जिनका वह निर्माण करती है। इस प्रकार शिक्षा अपने स्वयं के रूपान्तरण तथा प्रगति की वस्तुनिष्ठ स्थितियों के निर्माण में योगदान करती है।"

ISSN : 3048-6173

डॉ० राधाकृष्णन् के शैक्षिक विचारों की सार्थकता से पूर्व मैं प्रस्तुत शीषर्क के "आधुनिक शिक्षा" इन शब्दों को स्पष्ट करना चाहता हूँ यथा "आधुनिक" यह स्पष्ट है कि आज हम जिस समाज मे निवास कर रहे हैं वह 17वीं 18वीं 19वीं शती का या कोई अन्य समाज नहीं है। यो तो हर क्षण अपने में नूतन होता है, पूर्ण होता है। विकासवान परिप्र`क्ष्य में हर क्षण अतुलनीय होता है। आधुनिक से हमारा तात्पर्य एक ऐसा क्षण है, जो बीता नहीं है, बीतने में है। इस "बीतने" मे वस्तुतः हम जी रहे हैं। हमारे जीवन के जीने के साथ "बीतते क्षण" का सम्बन्ध है। वह अनुपमेय भी है। वह क्षण अपने अनुकूल जीने के लिये हमे विवश करता है। अवश होकर हम उसके पीछे दौड़ते रहते हैं। प्रतिरोध मृत्यु बन सकता है। अतः यह जानना कि वह क्षण जिसमे हम जी रहे हैं कैसा है हितकारी होगा; इससे जीने के लिये दिशा बोध होगा, हमें भविष्य के गन्तव्य का ज्ञान होगा। थोड़े से शब्दों मे आज का हमारा वह क्षण "होहल्ले" का है। यह "होहल्ला" कोई भूत या हौआ नहीं है। वह आज के संदर्भ की अनिवार्य निष्पत्ति है। यह निष्पत्ति विज्ञान तथा भौतिकता की दौड़ का प्रतिफलन है। रेल, जहाज, बम, प्रक्षेपणास्त्र, स्पूतनिक आदि ने इसको रूप दिया है। आर्थिक महत्वाकांक्षाओ ने इस "होहल्ले" को अधिक प्रेय बना दिया है। राजनीति के तथाकथित पूँजीवाद और समाजवाद ने हमारे आधुनिक संदर्भ को विघटित कर दिया है। हमारा जीवन द्विविधा की दरार में पल रहा है। दूसरे शब्दो मे वह संक्रमण काल में से होकर गुजर रहा है। आज हम जिस क्षण में साँस ले रहे हैं वह टूटते धार्मिक विश्वासों का, निष्ठाओं का संदर्भ है। इस संदर्भ में एक ओर राष्ट्रीय सीमाएँ विचलित हो रही हैं दूसरी ओर सांस्कृतिक परम्पराएँ विघटित हो रही हैं। यह हम नहीं कह सकते कि इनमे संस्कार हो रहा है। हाँ, यह अवश्य माना जा सकता है कि इनमें दिन-ब-दिन "संकरता" आ रही है। यह "संकरता" ही आधुनिक संदर्भ की सबसे बड़ी विशेषता है।

समस्या कथन

"डॉ० राधाकृष्णन् के शैक्षिक विचारों की आधुनिक भारतीय शिक्षा के परिप्रेक्ष्य में सार्थकता"

अध्ययन के उद्देश्यः प्रस्तुत अध्ययन का मुख्य उद्देश्य डॉ० सर्वपल्ली राधाकृष्णन् के शैक्षिक विचारों की आधुनिक भारतीय शिक्षा के परिप्रेक्ष्य में सार्थकता का अध्ययन करना है। शोधार्थी ने अपने इस अध्ययन में निम्नलिखित उद्देश्यो को प्राप्त करने का प्रयास किया है:- 1. आधुनिक भारतीय शिक्षा के परिप्रेक्ष्य में डॉ० राधाकृष्णन् के शैक्षिक विचारों की सार्थकता को देखना।

अध्ययन से सम्बन्धित परिकल्पनाः- प्रस्तुत अध्ययन की प्रकृति ऐतिहासिक एवं दार्शनिक प्रकार की है। अतः इसमे परिकल्पनाओ का प्रयोग न करके अध्ययन के उद्देश्यों पर महत्व दिया गया है।

ISSN : 3048-6173

अध्ययन का क्षेत्रः- प्रस्तुत अध्ययन डॉ० सर्वपल्ली राधाकृष्णन् के उपलब्ध ग्रंथों व्याख्यानों आदि के शैक्षिक विचारों तक सीमित है।

सम्बद्ध शोध साहित्यः- किसी भी शोध कार्य का अध्ययन करने के लिए यह आवश्यक हो जाता है कि शोधार्थी अपनी शोध समस्या के समरूप पूर्व में किए गये अन्य शोध कार्यों के बारे में संक्षिप्त जानकारी प्राप्त कर ले। इसी दृष्टिकोण से शोधार्थी ने डॉ० राधाकृष्णन् के शैक्षिक विचारों की आधुनिक भारतीय शिक्षा के परिप्रेक्ष्य में सार्थकता के संदर्भ मे पूर्व शोध अध्ययनो की विषय-वस्तु की जानकारी पुस्तकों, पत्र पत्रिकाओ शोध प्रबन्ध, लघु शोध प्रबन्ध, इन्टरनेट, शोध अध्ययन एवं प्रकाशित साहित्य के माध्यम से प्राप्त करने का प्रयास किया है। संक्षेप में उनका विवरण निम्न है- कैला देवी (1982), आर. पी. गुप्ता (1985), शर्मा, मुनेन्द्र (2000), भागवन्ती (1988), शर्मा, उमा रानी (1989), यादव वी. के. (2000)।

शोध विधि का चयनः प्रस्तुत शोधकार्य में दार्शनिक विधि, ऐतिहासिक विधि, विश्लेषण एवं विवेचन विधि का प्रयोग किया है।

डॉ० राधाकृष्णन् के शैक्षिक विचारों की आधुनिक भारतीय शिक्षा के परिप्रेक्ष्य में सार्थकता का अध्ययनः डॉ० राधाकृष्णन् के शैक्षिक विचारों की आधुनिक भारतीय शिक्षा के परिप्रेक्ष्य मे सार्थकता का अध्ययन निम्नलिखित बिन्दुओ के अन्तर्गत किया गया हैः-

आधुनिक भारतीय शिक्षाः- 1968 की शिक्षा-नीति लागू होने के बाद देश में शिक्षा का व्यापक प्रसार हुआ। पूरे देश मे शिक्षा की समान संरचना 10+2+3 को लागू किया। इस संरचना के अनुसार विद्यालयी पाठ्यक्रम में छात्र-छात्राओं को एक समान शिक्षा देने के लिये व्यवस्था की गयी और विज्ञान, गणित तथा कार्यानुभव (Work Experience) को महत्वपूर्ण स्थान दिया गया। उच्च शिक्षा के पाठ्यक्रमों मे भी परिवर्तन करने के लिये प्रयास किये गये। साथ ही स्नातकोत्तर शिक्षा को उन्नत बनाने के लिये शोध के लिये अध्ययन केन्द्र स्थापित किये गये। देश की आवश्यकतानुसार शिक्षित जनशक्ति की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये कदम उठाये गये।

आज की परिस्थितियों ने शिक्षा को एक दुराहे पर ला खड़ा किया है। आज भारत राजनीतिक तथा सामाजिक दृष्टि से एक ऐसे दौर से गुजर रहा है जिसमे परम्परागत तथा मानव मूल्यो का ह्रास हो रहा है और राष्ट्रीय लक्ष्यों की प्राप्ति में निरन्तर बाधाएँ उत्पन्न हो रही हैं।

आज भारतीय शिक्षा जिन विभिन्न शिक्षा संस्थाओ तथा अन्य अनौपचारिक (Informal) साधनो से प्रदान

ISSN : 3048-6173

की जा रही है। यदि उसका अवलोकन किया जाय तो वह एक दिन सीरिज (One Day Series) तक सीमित है जिसमें बच्चे को दस या पन्द्रह प्रश्नों के उत्तरों को याद करना पड़ता है और वह उनमे से पाँच प्रश्नों के उत्तर परीक्षा-कक्ष में उगल देता है। ऐसा भी है शिक्षा आज इतनी व्यावसायिक हो गयी है कि छात्रों को टेण्डर आधार पर नकल कराने के लिये सौदे किये जाते हैं। इनके आधार पर उनको परीक्षा में पास कराया जाता है और वे परीक्षा परिणामों के आधार पर प्रमाण-पत्र एवं उपाधियाँ प्राप्त करते हैं।

शिक्षा का महत्वः- डॉ० राधाकृष्णन् ने शिक्षा के महत्व को विभिन्न दृष्टिकोण से स्पष्ट किया है।

उन्होंने शिक्षा को मनुष्य तथा समाज का निर्माण करने वाला प्रमुख साधन माना है उनके अनुसार शिक्षा द्वारा मानव के मानसिक प्रशिक्षण के साथ-साथ, कल्पनाशक्ति तथा मनोभावों को निर्मल बनाया जाना चाहिये। शिक्षा का महत्त्व केवल ज्ञान तथा कौशल के विकास में नहीं है। इसे तो हमें सहयोगी जीवन के लिये तैयार करना चाहिये। शिक्षा हमे नैतिक गुणों के विकास के लिये प्रशिक्षित करे।

"If education is to help us to meet the moral challenge of the age and play its part in the life of the community, it should be liberating and life giving."

शिक्षा का संप्रत्ययः डॉ० राधाकृष्णन् शिक्षा को जीवन पर्यन्त चलने वाली प्रक्रिया मानते हैं जिसमे मानव शिक्षक से सीखता है, स्वयं सीखता है, जीवन तथा उसके अनुभवों से सीखता है, प्रत्येक क्षण, प्रत्येक कदम पर सीखता है, अपने घर, समुदाय, पत्र-पत्रिकाओं तथा अन्य इलैक्ट्रानिक तकनीकियों के माध्यम से सीखता है। इस प्रकार वह सतत् रूप से आजीवन सीखता रहता है। दूसरे शब्दों में डॉ० राधाकृष्णन् के अनुसार, "सम्पूर्ण जीवन अनुभव है। इसका कारण शिक्षा है।"

"All life is experience and therefore education."

डॉ० राधाकृष्णन् के उक्त विचार को शिक्षा आयोग (1964-66) ने इन शब्दो में पुष्ट किया है -

'स्कूल की पने की आवश्यकता है। जो लोग परिष्कृततम शिक्षा पा चुके हैं, उन्हें भी लगातार सीखने की आवश्यकता है।

डॉ० राधाकृष्णन् शिक्षा को रूपान्तरण की प्रक्रिया के रूप में देखते हैं। इसके माध्यम से व्यक्ति अपने जन्मजात स्वरूप को मानव स्वरूप में बदल सकता है। साथ ही वह अपने आन्तरिक स्वरूप को जानने में समर्थ होता है और स्वयं अपने अनुभवों से सीखकर प्राप्त की गई समझदारी को पारस्परिक क्रियाओ के माध्यम से "ज्ञान" की प्राप्ति कर सकता

ISSN : 3048-6173

है। उनके अनुसार ज्ञान, विवेक के अभाव में कुछ भी नहीं है। इस प्रकार शिक्षा मानव के पूर्ण विकास की प्रक्रिया के रूप में कार्य करती है।

शिक्षा की विषय-वस्तु: डॉ० राधाकृष्णन् ने शिक्षा में समग्र उपागम (Wholistic approach) का प्रतिपादन किया है। उन्होंने मानव मन की एकता पर बल देकर ज्ञान को अन्योन्याश्रित माना है। उनके अनुसार, हम जिन विषयो का अध्ययन करें, वे अन्तः पाठ्यक्रम उपागम (Interdisciplinary approach) पर बल देते हैं।

आधुनिक भारतीय शिक्षा के पाठ्यक्रम में विषयों की भरमार है। साथ ही दुख का विषय यह है कि उनको एक स्वायत्त इकाई के रूप में पेलने में समर्थ बना सके। उन्होंने वाचन, चिन्तन-मनन, व्याख्यान, लिखित कार्य, ट्यूटोरियल आदि पर बल दिया। डॉ० राधाकृष्णन् छात्र को मशीनी आदमी बनाने की अपेक्षा चिन्तनशील, निर्णयशील तथा क्रियाशील बनाना चाहते हैं।

शिक्षा के प्रयोजनः- डॉ० राधाकृष्णन् सूचना तथा तकनीकी योग्यता की अपेक्षा पारलौकिकता के ज्ञान पर बल देते हैं। ज्ञान एवं द्विता को साध्य स्वीकार नहीं करते वरन् उन्हे उच्चतर जीवन एवं दृष्टिकोण की प्राप्ति का साधन मानते हैं। वे यह तो स्वीकार करते हैं कि आधुनिक समाज मे ज्ञान तथा तकनीकी कौशल महत्वपूर्ण हैं। परन्तु वे उच्चतर दृष्टिकोण के निर्माण में एक साधन के रूप में कार्य करें। उन्होंने विज्ञान को आध्यात्मिक जगत् की जानकारी में सहायक माना है।

जिस प्रकार पदार्थ से जीवन, जीवन से बुद्धि और बुद्धि से मूल्यों की चेतना का विकास हुआ, उसी प्रकार मूल्यों की चेतना से ईश्वरीय अनुभूति का विकास हुआ। अर्द्ध-मानव से मानव जीवन का विकास हुआ है। इसी प्रकार मानव जीवन से दैवी जीवन का विकास होगा। यही उच्चतर जीवन या सर्वोच्च आध्यात्मिक आदर्श है। यही शिक्षा का प्रमुख प्रयोजन है।

चरित्र - निर्माण: डॉ० राधाकृष्णन् ने अपने युग की परिस्थितियों से प्रभावित होकर कहा, "भारत सहित सारे संसार के कष्टों का कारण यह है कि शिक्षा का सम्बन्ध नैतिक तथा आध्यात्मिक मूल्यों की प्राप्ति से न रहकर केवल मस्तिष्क के विकास से रह गया है।" उन्होंने इस सूत्र में अपनी आस्था व्यक्त की "चरित्र ही भाग्य है"। उन्होंने चरित्र को व्यक्ति तथा राष्ट्र दोंनों के लिये अनविार्य माना।

सामाजिक मुक्तिः- डॉ० राधाकृष्णन् एक ऐसे समाज की स्थापना करना चाहते थे जिसमे विभिन्नताओं के रहते हुए सामाजिक एकता हो। इसके लिये वे समाज के रूपान्तरण पर बल देते हैं। इसके लिये वे छात्रों को सामाजिक

ISSN : 3048-6173

वातावरण के साथ अनुकूलन के लिये प्रशिक्षण देने पर बल नहीं देते वरन् उसके सुधार पर बल देते हैं। डॉ० राधाकृष्णन् सामाजिक रूपान्तरण के लिये सत्य की खोज तथा सामाजिक उन्नति के कार्यों के रूप में शिक्षा की कल्पना करते हैं जिससे एक सभ्यता का निर्माण किया जा सके।

आत्म ज्ञानः - डॉ० राधाकृष्णन् के अनुसार आत्म-ज्ञान व्यक्ति को सम्पूर्ण मानवता के सम्पर्क मे लाने में सहायक है। साथ ही यह मानव आशाओं और आकाँक्षाओ की पूर्ति में सहायता देता है। आत्म-ज्ञान स्वतंत्रता के वातावरण मे प्राप्त हो सकता है। अतः शिक्षा द्वारा व्यक्ति को चिन्तन एवं निर्णय करने की स्वतंत्रता प्रदान करें। वास्तविक स्वतंत्रता तो आध्यात्मिक स्वतंत्रता है सच्चा स्वराज्य तो मनुष्य की आत्मा का स्वराज्य है। व्यक्ति ही संसार का केन्द्र बिन्दु है। जीवन की अभिव्यक्ति उसी में होती है। सत्य का दर्शन व्यक्ति को होता है।

डॉ० राधाकृष्णन् का मानव की आत्मिक शक्ति मे अपार विश्वास था। वे विज्ञान, तर्क, परम्परा सभी से ऊपर मन की आत्मिक शक्ति को स्थान देते थे। उनका कहना है कि विज्ञान विश्व की परिधि, वस्तुओं के बाह्य आकार, ब्रह्माण्ड की विविधता और बहुरूपता पर दृष्टिपात करता है, किन्तु अस्तित्व के केन्द्र को, जहाँ से ये समस्त वस्तुऐं आती हैं और निकलती हैं केवल एकान्त चिन्तन द्वारा महसूस किया जा सकता है।

शिक्षकः- भारत की समस्याओं और मानव-संस्कृति के इतिहास को देखते हुए डॉ० राधाकृष्णन् के कार्य और विचार सबसे अधिक प्रासांगिक है। देश के जीवन में विभिन्न क्षेत्रों और स्तरों पर आज जो अन्धकार और निराशा हमें घेरे हुए है, उसमे आशा की किरण शिक्षा संस्थाओं तथा शिक्षकों से ही प्रकाशित हो सकती है। उन्हों ने शिक्षा संस्थाओ को राष्ट्र का निर्माता स्वीकार किया।

"A Nation is built in its educational institutions. We have to train our youth in them. We have to impart them the tradition of the future".

इन संस्थाओं में राष्ट्र का निर्माण करने वाला कौन है? डॉ० राधाकृष्णन् शिक्षक को राष्ट्र के भावी नागरिकों का निर्माण कर्ता मानते हैं। वे मानवतावादी विचारक तथा प्रचीन भारतीय संस्कृति के समर्थक होने के नाते शिक्षक को महत्वपूर्ण स्थान प्रदान करते हैं। "जिस व्यक्ति की आत्मा से दूसरी आत्मा में शक्ति का संचार होता है, वह गुरू कहलाता है और जिसकी आत्मा में यह शक्ति संचरित होती है, उसे शिष्य कहते हैं"। डॉ० राधाकृष्णन् के शिक्षक छात्र सम्बन्ध को अभिभावक एवं बालक के रूप में स्वीकारा है। वे शिक्षक को बालक का दूसरे माता-पिता मानते हैं। उन्होंने शिक्षक के छात्र के प्रति निम्न कर्तव्य निर्धारित किये-

ISSN : 3048-6173

1. शिक्षक छात्रों के मनोविवान को जाने।

2. शिक्षक छात्रों के साथ मित्रभाव उत्पन्न करे तथा उसे बनाये रखे।

3. शिक्षक अपने मन में छात्र के लिये प्रेम रखे।

शिक्षा की संरचनाः डॉ० राधाकृष्णन् ने 10+2+3 की शैक्षिक संरचना का प्रतिपादन किया जिसकी प्रासंगिकता को स्वीकार करके शिक्षा आयोग (1964-66) में भी इसके लिये सुझाव दिया। 1968 तथा 1986 की राष्ट्रीय शिक्षा नीतियों ने इसको लागू करने पर बल दिया। आज भारतीय शिक्षा में यह शैक्षिक संरचना लागू है।

अनुशासनः डॉ० राधाकृष्णन् चाहते थे कि प्राचीन काल के अनुसार पुनः गुरू-शिष्य के बीच में आदर की भावना जाग्रत हो। खेद है कि इस आधुनिक युग में प्राचीन शिक्षा पद्धति की स्थापना नहीं हो सकती। परन्तु उनका विश्वास था कि ऐसे शिक्षक अवश्य मिल सकते हैं जो छात्र के मित्र, पथ-प्रदर्शक तथा सहायक बन सकें। उन्होंने आधुनिक शिक्षा संस्थाओं में अनुशासन की स्थापना हेतु निम्न बातों पर बल दिया

1. नैतिक शिक्षा दी जाय। परन्तु यह कार्य सुझावों तथा उदाहरणों के माध्यम से किया जाना चाहिये।

2. सत्संग के प्रभाव को स्वीकारा।

3. श्रेष्ठ पुस्तकों के अध्ययन द्वारा।

4. महान् व्यक्तियों के बारे मे जानकारी प्रदान करके।

ग्रामीण विश्वविद्यालयः डॉ० राधाकृष्णन् उन चिन्तकों मे अग्रणी हैं जिन्होंने भारतीय परिस्थितियों के अनुकूल ग्रामीण समाज के उत्थान के लिये महती कार्य किया। भारत कृषि प्रधान देश है। अतः उसकी उन्नति एवं आवश्यकताओं के लिये आवश्यक कदम उठाने होंगे। ग्रामीण भारत की सामान्य उन्नति के लिये कुशलता और प्रशिक्षण की सीमा और गुण में निरन्तर विकास करना होगा। इनको प्रदान करने के लिये और शिक्षित नागरिकों की आवश्कताओं को पूर्ण करने के लिये ग्रामीण कॉलेजो तथा विश्वविद्यालय की पद्धति आवश्यक है। अतः इस दिशा में कार्य करना वांछनीय है -

"Rural India is a great reservoir of creative life but the pattern that life shall adopt is not yet determined..... So far as our rural population is concerned, the development, enlargement and refinement of that design should largely be the work of rural education."

ISSN : 3048-6173

डॉ० राधाकृष्णन् के ग्रामीण विश्वविद्यालय के विचार को राष्ट्रीय शिक्षा नीति-1986 में स्वीकार किया गया

"The new pattern of the Rural University wil be considered and developed on the lines of Mahatma Gandhi's revolutionary ideas of education so as to take up the challenges of microplanning at grass root levels for the transformation of rural areas".

इस स्थिति से दूर होने के लिये उन्होंने आध्यात्मिक आस्था की आवश्यकता पर बल दिया। यह आस्था विवेकशील है जो सम्पूर्ण मानवजाति में निष्ठा रखती है। इस प्रकार इस महान् शिक्षाशास्त्री एवं विचारक ने वर्तमान विपन्न स्थिति मे परिणाम के लिये आध्यात्मिक नवजागरण को माध्यम बनाने पर बल दिया। इस नवजागरण के लिये शिक्षा को महत्वपूर्ण साधन बताया। आज हमें अपनी शिक्षा में इसको स्थान देना होगा। साथ ही मानव के विकास की भावी सम्भावना के प्रति विश्वास जाग्रत करना होगा।

नारी शिक्षाः- डॉ० राधाकृष्णन् ने नारी शिक्षा को राष्ट्र निर्माण के लिये महत्वपूर्ण माना हैं

"There can not be an educated people without educated women".

उन्होंने स्त्री-शिक्षा को परिवार निर्माण के लिये महत्वपूर्ण माना है। इस दृष्टि से उन्हो ने उनकी शिक्षा के लिये विशिष्ट पाठ्यक्रमों के आयोजन पर बल दिया हैं। इनमें गृह-अर्थशास्त्र, नर्सिंग प्रशिक्षण, शिक्षक प्रशिक्षण तथा ललित कलाओ को स्थान प्रदान किया है। शिक्षा अयोग 1964-66 ने डॉ० राधाकृष्णन् के विपरीत स्त्री शिक्षा के क्षेत्र को विस्तृत बनाने पर बल दिया है। परिस्थितियों के परिवर्तन ने स्त्री-शिक्षा के क्षेत्र में आज महान् परिवर्तन ला दिये हैं। परन्तु डॉ० राधाकृष्णन् ने नारी शिक्षा के पारिवारिक क्षेत्र पर ही बल दिया था। वह क्षेत्र आधार है। अतः आधार के रूप में उनके विचार प्रासांगिक हैं। परन्तु समय की परिवर्तनशीलता के अनुकूल नारी-शिक्षा की भूमिकाओं में परिवर्तन करने होंगे।

अध्ययन से प्राप्त निष्कर्ष

- डॉ. राधाकृष्णन ने शिक्षा का केन्द्र विद्यार्थी को माना है। अतः विद्यार्थी में नैतिक, बौद्धिक, आध्यात्मिक, सामाजिक, व्यावसायिक आदि मूल्यों का संचरण करने का प्रयास करना चाहिए।
- शोधकर्ता ने अपने शोध अध्ययन में पाया कि डॉ. राधाकृष्णन के धार्मिक शिक्षा संबंधी विचार बड़े ही व्यापक थे। वे किसी एक धर्म की शिक्षा प्रदान करने के पक्ष में नहीं थे। वे धर्म को साम्प्रदायिकता से पृथक् रखना चाहते थे। वे धार्मिक अन्धविश्वासों एवं बाह्य आडम्बरों मे भी विश्वास नहीं करते थे।

ISSN : 3048-6173

- उनके अनुसार शिक्षण संस्थाओ का मुख्य उद्देश्य विद्यार्थियों को प्रकृति-प्रेम, मानवतावाद एवं समन्वय की शिक्षा प्रदान करना होना चाहिए।
- शोधकर्त्ता ने अपने अध्ययन में पाया कि शिक्षा को जीवन से पृथक् नहीं किया जा सकता इसलिए शिक्षा जीवन के अनुसार ही होनी चाहिए अर्थात् शिक्षा मनुष्य एवं प्रकृति से संबंधित होनी चाहिए जबकि वर्तमान मे शिक्षा का जीवन से कोई तालमेल नहीं किताबी ज्ञान को ही शिक्षा माना जा रहा है।
- वर्तमान शिक्षा पाठ्यक्रम के अनुसार ही आदर्शों, परम्पराओं, प्रथाओं और रीति-रिवाजों को स्थान दिया जाना चाहिये।
- शोधकर्ता ने अपने अध्ययन में पाया कि शिक्षार्थी शिक्षक संबंध, पिता-पुत्र तुल्य तथा शिक्षण विधियाँ, मनोवैज्ञानिक तकनीकों पर आधारित होनी चाहिए।

संदर्भ

१. राजेन्द्र प्रसाद श्रीवास्वत भारत के महान् शिक्षा शास्त्री, प्रकाशन विभाग, सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली, 1942

२. राधाकृष्णन, एस एजूकेशन पालिटिक्स एण्ड वार, पूना, 1942

३. राधाकृष्णन, एस भारत और विश्व, अशोक प्रकाशन, दिल्ली, 1949

४. शर्मा, रामनाथ समकालीन भारतीय शिक्षा दार्शनिक, एटलांटिक पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, 1996

५. सिंह, परमेश्वर प्रसाद भारत मे महान शिक्षा शास्त्री सन्मार्ग प्रकाशन, दिल्ली, 1997

६. पाण्डेय, रामशकल विश्व के श्रेष्ठ शिक्षा शास्त्री, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा, 1999

७. राधाकृष्णन, सर्वपल्ली हमारी संस्कृति, हिन्द पॉकेट बुक्स, प्राइवेट लिमिटेड, दिल्ली, 1999

८. पाण्डेय, रामशकल शिक्षा के दार्शनिक एवं समाजशास्त्री पृष्ठभूमि, श्री विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा

९. सिंह, ओ.पी. शिक्षा दर्शन एवं शिक्षा शास्त्री, शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद

ISSN : 3048-6173

शिक्षा कौस्तुभ | ▪▪▪■▪▪▪ | त्रैमासिक शोध पत्रिका

ब्रह्माण्डमण्डलपरिज्ञानम्

डॉ. रामदेव साहू

प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष (वेदविज्ञान)

विश्वगुरुदीप आश्रम शोध संस्थान, जयपुर (राज.)

अस्मिन् ब्रह्माण्डे ! त्रीणि मण्डलानि सन्ति - आध्यात्मिकं मण्डलम्, आधिभौतिकं मण्डलम् आधिदैविकं मण्डलं च। सर्वप्रथमम् आधिदैविकप्रपञ्चेन आधिभौतिकस्य प्रपञ्चस्य उत्पत्तिर्भवति। ततः आधिभौतिकाधिदैविकसम्मिश्रणेन अध्यात्मप्रपञ्चस्य विकासो भवति। उपर्युक्तेषु एतेषु त्रिषु मण्डलेषु मूलभूतम् आधिदैविकं मण्डलं पञ्चमण्डलात्मकमस्ति। अतएव सर्वमिदं वस्तुजातं प्रपञ्च इत्याख्यायते। आधिदैविकान्तर्गतानि तानि पञ्चमण्डलानि सन्ति - प्राणः आपः वाक् अन्नम् अन्नादश्च। प्रारम्भे आधिदैविकं मण्डलमिदं ब्रह्माण्डस्य शब्दस्पर्शरूपरसगन्धरहितां स्थितिमाचष्टे। एषां शब्ददिविषयाणामभावेऽपि एकं मौलिकं तत्त्वं अविद्यत प्राणबीजभूतम्। तद्धि 'ऋषि' शब्देन व्यवह्रियते। यथोक्तं शतपथब्राह्मणे -

'असद्वा इदमग्र आसीत्। तदाहुः - किं तदसदासीदिति ? ऋषयो वाव तदग्रेऽसदासीदिति। तदाहुः - के ते ऋषय इति? प्राणा वा ऋषयः। ते यत् पुराऽस्मात् सर्वस्मादिदमिच्छन्तः श्रमेण तपसा अरिषँस्तस्माद् ऋषयः इति।'[1]

अत्रोक्तं यत् सृष्टेः प्राक् असदात्मकः सर्वजगत्प्रभवप्रतिष्ठापरायणभूतः कश्चित् तत्त्वविशेष आसीत्। स एव प्राणः। यस्मिन् वस्तुनि प्राणो वसति तद् वस्तु 'सत्' शब्देनोच्यते। प्राण एव सत्त्वमाचष्टे। सतः पूर्वावस्थायां विद्यमानत्वात् प्राणः एव असत्'शब्देनात्र संकेतितः। अर्थात् पदार्थानामस्तित्वप्राप्तेः पूर्वं तदस्तित्वकारि तत्त्वं प्राणः आसीत्। स च पदार्थाभावे स्वास्तित्वं द्योतयितुमक्षम एवासीत्। अतएव 'असत्' इति शब्देनोक्तम्। अपि चैवमपि वक्तुं शक्यते यत् प्राणतत्त्वमिदं पदार्थवत् प्रतीयमानं नासीत्। प्रतीत्यभावे विद्यमानस्यापि तस्यासदिति संज्ञाऽऽसीत्। इदमेव प्राणमण्डलं स्वयम्भूमण्डलमप्युक्तम्। यतो हि प्राणतत्त्वमिदं स्वयम् भवति। अतएवायमेव स्वयम्भूःकथ्यते। अस्यैवापरं नाम हिरण्यगर्भः। उक्तं च 'हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातःपतिरेक आसीद्' इति।

अनेनैव प्राणात्मकेन स्वयम्भुवा सर्वप्रथमम् अबुत्पत्तिः क्रियते। तत्कथमिति चेदुच्यते सर्वप्रथमं प्राणतत्त्वामिदं 'एकोऽहं बहु स्याम्' इत्याकारकेण स्वान्तर्गूढेच्छाशक्तिबलेन आनन्त्यमुपयाति। आनन्त्ये सति तेषु प्राणेषु द्वैधीभावः समुत्पद्यते - सजातीयत्वं विजातीयत्वं च । ततो विजातीयेषु अनन्तप्राणेषु केन्द्रे घर्षणात् अबुत्पत्तिः सम्भवति। घर्षणाधीनत्वात् एभ्यः ऋषिप्राणेभ्यः आपो धाराः सर्वतः प्रस्रवन्ति। अस्मिन् विषये भगवतो मनोर्वचनानि प्रमाणानि सन्ति-

ISSN : 3048-6173

''ततःस्वयंभूर्भगवान् अव्यक्तो व्यञ्जयन्निदम्।
महाभूतादिवृत्तौजाः प्रादुरासीत्तमोनुदः।।

योऽसावतीन्द्रियग्राह्यः सूक्ष्मोऽव्यक्तः सनातनः।
सर्वभूतमयोऽचिन्त्यः स एव स्वयमुद्बभौ।।

सोऽभिध्याय शरीरात् स्वात् सिसृक्षुर्विविधाः प्रजाः।
अप एव ससर्जादौ तासु बीजमवासृजत्।।''[2]

अत्र यस्य 'बीज' शब्दस्य प्रयोगो विहितःसः कः इति चेदुच्यते। बीजोऽयं ऋतस्य तन्तुरूपः। उक्तं चाथर्ववेदे - 'परिविश्वा भुवनान्यमृतस्य तन्तुं दृशे कम्।' इति। रीयते प्रस्रवते इति ऋतम् अप् एव। तत्सम्बन्धात् ये तन्तवः बीजरूपाण्याविर्भूतस्ते परमाणव एव। वस्तुतस्त्वेते आधिभौतिकमण्डलस्य बीजानि सन्ति यैरिदं दृश्यमानं जगत् उत्पद्यते। एतान्यपि परमाण्वित्याख्यानि बीजानि प्राणवत् द्विधा सम्भवन्ति सजातीयानि विजातीयानि चेति। ततो विजातीयेष्वनन्तपरमाणुषु केन्द्रघर्षणात् वागुत्पद्यते। सा च प्राणसम्पर्कात्सविशेषा आत्मरूपा वेदसंज्ञाविशिष्टा जायते। एवं स्वायम्भुवाद् हिरण्यगर्भाद् ब्रह्मण एव आध्यात्मिकमण्डलस्याधिष्ठानरूपा वेदोत्पत्तिर्भवति। इदं वेदतत्त्वं प्राथम्येन चतुर्धा विभज्यते। तद्यथा-

1. **ब्रह्मनिश्श्वसितं वेदः** - निश्श्वासः स्पन्दरूपः। स च शाश्वतिकः । अस्य संज्ञा ऋक्। अयं छन्दोवेदः। आत्मनः अच्छादनाय आकृतिमाधातुं तत्परः। तस्मान्मूर्त्तिरित्यप्युक्तः। अनेनैव स्पन्दरूपेण ब्रह्मनिश्श्वसितेन सजीवनिर्जीवपदार्थानामाकृतिधारणं सम्भवति।

2. **ब्रह्मस्वेदो वेदः** - स्वेदो विकारः तेजसः प्रख्यापकश्च। अस्य संज्ञा साम। अयं वितानवेदः। आत्मनो विस्ताराय तत्परः। गृहीताकृतेर्विस्तारोऽनेन सम्भवति। सजीवनिर्जीवपदार्थानां समृद्धिरनेन जायते।

3. **यज्ञमातृको वेदः** - यज्ञः क्रियारूपः स्थितिगतिप्रख्यापकश्च। अस्य संज्ञा यजुः। अयं हि रसवेदः। आत्मनः शक्तिमाधातुं तत्परः। सजीवनिर्जीवपदार्थेषु विविधशक्तीनामुपपत्तिरनेन जायते।

4. **यज्ञनिधानं वेदः** - यज्ञरूपायाः क्रियायाः निधानं नियन्त्रणं तत्प्रख्यापकश्च। अस्य संज्ञा अथर्वः। अयंहि अधिष्ठानवेदः। आत्मानमाधिष्ठापयितुं तत्परः। सजीवनिर्जीव पदार्थेषु ब्रह्मरूपिणः प्राणतत्त्वस्य सत्त्वमनेनैव स्थिरीभवति।

एषु चतुर्षु त्रयाणां विषये तैत्तिरीयब्राह्मणेऽप्युक्तम् -

ISSN : 3048-6173

''ऋग्भ्यो जातां सर्वशो मूर्त्तिमाहुः
सर्वा गतिर्याजुषी हैव शश्वत्।
सर्वं तेजः सामरूपं ह शश्वत्
सर्वं हीदं ब्रह्मणा हैव सृष्टम्।।''[3]

स्पष्ट्युत्पत्तौ यजुर्महत्वं स्वीक्रियते। उक्तञ्च - यजुश्च स्थितिगत्यात्मको वेदः। यद्भावो गतितत्त्वं जूभावश्च स्थितितत्त्वम्। यश्च जूश्च यज्जूः। यज्जूरेव परोक्षप्रियाणां देवानां समये यजुः। ऋक्सामे वयोनाधे। यजुश्च वयः। ऋक्सामे यजुरपीतः इति हि अग्निरहस्यविदः प्राहुः। यजुषा एव सर्वा सृष्टिर्विधीयते। उक्तं च - यद्भावो गतिरिति। सैषा गतिः वायुरेव । स्थितिभावश्च आकाशः। तथा चोक्तं श्रुतौ -

''अयं वाव यजुर्योऽयं पवते। एष हि यन्नैवेदं जनयति। एतं यन्तमिदमनु प्रजायते। तस्माद् वायुरेव यजुः। अयमेवाकाशो जूः यदिदमन्तरिक्षम्। एतं ह्याकाशमनु जवते। तदेतद्यजुर्वायुश्चान्तरिक्षञ्च। यच्च जूश्च। तस्माद्यजुः। तदेतद्यजुर्ऋक्सामयोः प्रतिष्ठितम्। ऋक्सामे वहतः।''[4]

यजुःरूपिणोर्वाय्वाकाशयोर्यः आकाशः स द्विविधः। अमृताकाशः मर्त्याकाशश्च। अमृताकाश इन्द्रः। तमेतमेवेन्द्रं 'शुनं हुवेम मघवानमिन्द्रम्' इत्यादि रूपेण निरूपयन्ति महर्षयः। 'नेन्द्रादृते पवते धाम किंचन' इति मन्त्रेण अमृताकाशात्मक एष इन्द्रः सर्वव्यापकः सिद्ध्यति। एष एव क्रमेण इन्द्रः इन्दरः इत्थरः एवं रूपेण परिवर्तमानः 'ईथर' नाम्ना प्रसिद्धोऽभूत्। अयं हि सर्वेषु प्राणेषु परमाणुषु च प्रविष्टवान्। अनेन ते स्वरूपमापन्नाः। अनेनामृतमयेनेन्द्रेण सह नित्यसम्बद्धा वागेव मर्त्याकाशरूपा। सैषा वाक् इन्द्रपत्नी। 'तस्यैतस्याग्नेर्वागेवोपनिषत्' इति श्रुत्या मर्त्याकाशरूपा इयं वाक् अग्निमयी वर्तते। यत्स्वरूपस्य वायोर्व्यापाराद् एष वाङ् मयोऽग्निरेव अंशात्मना द्रुतो भूत्वा अब्रूपतां भजते। यथोक्तं शतपथ ब्राह्मणे-

''प्रतिष्ठा ह्येषा यद् ब्रह्म। तस्यां प्रतिष्ठायां प्रतिष्ठितोऽतप्यत। सोऽपोऽसृजत वाच एव लोकात्। वागेव साऽसृज्यत। सा इदं सर्वमाप्नोद्यदिदं किञ्च।यदाप्नोत्तस्मादापः। यदवृणोत् तस्माद्वाः।''[5]

तदिदं द्वितीयमापोमण्डलं नाम। एतदेव परमेष्ठिमण्डलमित्यप्युच्यते। परमेष्ठिमण्डलीया आपः अम्भः इत्युच्यन्ते। ततश्च तेषामम्भसाम् अपां घर्षणेन तस्मिन्नापोमये सरस्वान्नामके महासमुद्रे अप्परमाणवो यज्ञवराहमूर्त्तिना वायुना क्रमेण घनीभूताः सन्तः समुद्रकेन्द्रे प्रज्वलिता भूत्वा मण्डलाकारतां भजन्ते। तृतीयञ्च वाङ्मण्डलम्। सूर्यमण्डलात्मिकया वाचा ऋग्यजुःसामात्मिकायाः त्रयीविद्यायाः प्रादुर्भावो भवति। स एष ब्रह्मनिश्श्वसितवेदाद् भिन्नो गायत्रीमातृको वेदः। वेदोपादानतयैव एषा सौरी वाक् वेदानां माता उच्यते। यथोक्तं तैत्तिरीय ब्राह्मणे -

ISSN : 3048-6173

''वागक्षरं प्रथमजा ऋतस्य

वेदानां माता अमृतस्य नाभिः।

सा नो जुषाणोपयज्ञमागा–

दवन्ती देवी सुहवा मेऽस्तु।।''[6]

तदनन्तरं सौररश्मिघर्षणात् पुनः द्वितीयाः आप उत्पद्यन्ते। ता एताः सूर्यमण्डले व्याप्ता आप एव मरीचय उच्यन्ते। ततस्तु तेषामपि मरीचिसंज्ञकानामपां घर्षणेन तस्मिन् सौरमण्डलस्थे आपोमये अर्णवनाम्ना प्रसिद्धे अपां समुद्रे रुद्राग्निः प्रविशति। रुद्राग्नेस्तत्र प्रवेशाद् रासायनिकप्रक्रियया क्रमशःआपः - फेनः - उषः - सिकता - शर्करा - अश्मा - अयस् - हिरण्यम् इत्यष्टव्याहृत्यात्मकं पृथिवीमण्डलमुत्पद्यते। अर्थात् अबग्निसंयोगाद् अपां शैत्यनाशाद् अग्नेश्च तापक्षयात् तृतीयम् अनुष्णाशीतं द्रव्यम् उत्पद्यते। तदेव पृथिवीमण्डलमुच्यते। पृथिव्या अष्टव्याहृत्यात्मकादेव गायत्री अष्टाक्षरा उच्यते। शब्दरूपगायत्रीछन्दःसादृश्यात् पृथिवीमण्डलमपि गायत्रीशब्देनाचक्षते वैज्ञानिकाः। यथोक्तं शतपथब्राह्मणे -

''देवाश्च वा असुराश्च उभये प्राजापत्याः पस्पृधिरे। तान् स्पर्धमानान् गायत्री अन्तरा स्थ। या वै सा गायत्री आसीत् – इयं वै सा पृथिवी। इयं हैव तदन्तरा तस्थौ। ''[7]

पृथिवीगर्भस्थोऽमृताग्निरेव अन्तरिक्षे सर्वतो व्याप्तं सोमात्मकमन्नं भक्षयति। एतेनैव च सोमाहुतिस्वरूपयज्ञेन केन्द्रे प्रतिष्ठितः सन् अमृताग्निरूपः प्रजापतिः अस्य पृथिवीमण्डलस्य रक्षां करोति। पृथ्वीमण्डलस्थोऽयमृताग्निरेव समेषां सजीवनिर्जीवपदार्थानां विश्वस्य च योनिः (उत्पत्तिस्थानम्)। अतएवोक्तम् -

'' तस्य योनिं परिपश्यन्ति धीरास्तस्मिन् ह तस्थुर्भुवनानि विश्वा''[8]

पृथिवीपिण्डस्थोऽमृताग्निस्वरूपोऽयं प्रजापतिः सोमान्नं भक्षयति। अतएव इदं पृथिवीमण्डलं शरीरशारीरयोरभेदाद् अन्नादमण्डलमुच्यते। यः खलुभोक्ता स एव अन्नादः। तदिदं चतुर्थमन्नादमण्डलं नाम। तदनन्तरं पृथिवीमण्डलस्थात् अत्रिनेत्रात् अर्थात् पारदर्शित्वप्रतिबन्धकात्रिप्राणात् सोमस्योत्पत्तिर्जायते। उक्तञ्च ब्रह्माण्डपुराणे -

''ऊर्ध्वमाचक्रमे तस्य सोमत्वं भावितात्मनः।

नेत्राभ्यामस्रवत्सोमो दशधा द्योतयन् दिशः।।''[9]

अयमत्रिप्राणोत्पन्नः पृथ्वीमण्डलान्तर्वर्त्ती सोम एवान्नबीजम्। अनेनैव अन्नानि ओषधयो वनस्पतयश्चोत्पद्यन्ते। तस्मादिदमन्नमण्डलमुच्यते। चन्द्रमा अस्य प्रतिनिधिः। स देवानामन्नम्। सोममयत्वाच्चन्द्रमा अपि अत्रिपुत्र एव। विषयेऽस्मिन् सम्प्रोक्तं शतपथब्राह्मणे -

ISSN : 3048-6173

''ते देवा अब्रुवन् - न वा इममन्यत सोमाद्धिनुयात्। सोममेवास्मै सम्भरामः। तस्मै सोमं समभरत् । एष वै सोमो राजा देवानामन्नं यच्चन्द्रमाः।''[10]

एवं यानि पञ्चमण्डलानि आधिदैविकानि तान्यधिकृत्य पञ्चदेवताः प्राथम्येन प्रतिष्ठिताः -

स्वयम्भूः (प्रजापतिः प्राणो वा), परमेष्ठी (विष्णुः आपो वा) सूर्यः (इन्द्रः वाग्वा), पृथिवी (अग्निः अन्नादो वा), चन्द्रमाः (अन्नं, सोमो वा) चेति।

एषु स्वयम्भूराकाशत्वेन प्रातिष्ठत। परमेष्ठी वायुत्वेन प्रातिष्ठत। सूर्यस्तेजोमयपिण्डत्वेन प्रातिष्ठत। पृथिवी मृत्पिण्डत्वेन प्रातिष्ठत। चन्द्रमा अप्त्वेन प्रातिष्ठत। पश्चात् भूतपिण्डेष्वपि क्रमशः ब्रह्म-विष्णु-इन्द्र-अग्नि-सोमाख्या पञ्चैवेमा देवताः प्रतिष्ठिता बभूवुः। एता एव यज्ञेन यज्ञमयजन्त। उक्तञ्च शतपथब्राह्मणे दर्शपौर्णमासरहस्ये -

'ता वा एताः प्रजापतेरधिदेवता असृज्यन्त - अग्निरिन्द्रः सोमः परमेष्ठी प्राजापत्यश्च। स आपोऽभवत्। आपो वा इदं सर्वम्। ता यत् परमे स्थाने तिष्ठन्ति तस्मात् परमेष्ठी नाम। स प्राणोऽभवत्। प्राणो वा इदं सर्वम्। यद्वै किंचप्राणि स प्रजापतिः। सा वागभवत्। वाग्वा इदं सर्वम्। तस्मादाहुरिन्द्रो वागिति। अन्नाद एवाग्निरभवत्। अन्नं सोमः। अन्नादश्च वा इदं सर्वमन्नं च । ता वा एताः पञ्च देवता एतेन कामप्रेण यज्ञेनायजन्त।''[11]

एता एव क्षरपुरुषस्य पञ्च कला अप्युच्यन्ते। आसां यानि पञ्चमण्डलानि पूर्वोद्दिष्टानि तान्येव कालान्तरे देवताप्राधान्यात् ब्रह्ममण्डलम्, विष्णुमण्डलम्, इन्द्रमण्डलम्, अग्निमण्डलम्, सोममण्डलञ्चेति नामभिरपि प्रसिद्धानि बभूवुः। तत्रोक्तम् - ब्रह्माक्षरमयं ब्रह्म मण्डलं प्राणमयम्। विष्वक्षरमयं मण्डलं परमेष्ठिमण्डलम् आपोमयम्। इन्द्राक्षरमयं सूर्यमण्डलम् वाङ्मयम्। अग्न्यक्षरमयं पृथ्वीमण्डलम् अन्नादमयम्। सोमाक्षरमयं चन्द्रमण्डलम् अन्नमयञ्च।

इत्थं प्राणाब्वागन्नादान्नात्मकानि स्वयम्भू-परमेष्ठि-सूर्य-पृथिवी-चन्द्रेत्येतानि यानि पञ्चमण्डलानि तेषां समष्टिरेव आधिदैविकं मण्डलम्।

सन्दर्भा :

1. शतपथब्राह्मण - 6/1/1/1
2. मनुस्मृति - पृ.सं. 168
3. तैत्तिरीयब्राह्मण - 3/12/9/1
4. शतपथब्राह्मण - 10/3/5/1
5. शतपथब्राह्मण - 6/1/7/8
6. तैत्तिरीयब्राह्मण - 2/1/5/1
7. शतपथब्राह्मण - 1/4/3/33
8. मुण्डकोपनिषद् - पृ.सं. 92
9. ब्रह्माण्डपुराणम् - पृ. सं. 285
10. शतपथब्राह्मण - 1/6/4/4
11. शतपथब्राह्मण - 1/1/1/6

ISSN : 3048-6173

शिक्षा कौस्तुभ | ▪▪▪■▪▪▪ | त्रैमासिक शोध पत्रिका

शिक्षा दर्शन के विकास में श्रीमद्भगवद् गीता का महत्व

डॉ. सीमा कुण्डारा
सह आचार्य
राजस्थान शिक्षण प्रशिक्षण विद्यापीठ
शाहपुरा बाग, आमेर रोड, जयपुर

शिक्षा-दर्शन शिक्षाशास्त्र की वह शाखा है, जिसमें शिक्षा के सम्प्रत्ययों, उद्देश्यों, पाठ्यक्रम, शिक्षण विधियों एवं शिक्षा सम्बन्धी अन्य समस्याओं के सन्दर्भ में विभिन्न दार्शनिकों एवं दार्शनिक सम्प्रदायों के विचारों का आलोचनात्मक अध्ययन किया जाता है। शिक्षा-दर्शन, दर्शन का ही एक क्रियात्मक पक्ष है, जिसका विवेचन अलग से न होकर दर्शन के अन्दर ही किया गया है। शिक्षा-दर्शन वास्तव में दर्शन होता है, क्योंकि उसमें भी अन्तिम सत्यों, मूल्यों, आदर्शों, आत्मा-परमात्मा, जीव, मनुष्य, संसार, प्रकृति आदि पर चिन्तन एवं उसके स्वरूप को जानने का प्रयास किया जाता है। वर्तमान दर्शन का अर्थ अत्यन्त व्यापक है और इसका क्षेत्र अत्यन्त विस्तृत है। इस कारण आज हमारे समक्ष आध्यात्मिक दर्शन, नैतिक दर्शन आदि ही नहीं, वरन् सामाजिक दर्शन, आर्थिक दर्शन, राजनीतिक दर्शन, शिक्षा-दर्शन आदि शब्द भी आते हैं । उपर्युक्त सभी विषयों में दर्शन का अभिप्राय तत्वसम्बन्धी अन्तिम ज्ञान से लगाया जाता है। अब प्रश्न यह कि शिक्षा दर्शन क्या है? शिक्षा दर्शन के अर्थ को स्पष्ट करते हुए कनिंघम ने लिखा है :- "प्रथमतः दर्शन" सभी वस्तुओं का विज्ञान है, इस प्रकार शिक्षा-दर्शन शिक्षा की समस्याओं को अपने सभी मुख्य पक्षों में देखता है। द्वितीय, दर्शन सभी वस्तुओं की 'अन्तिम तर्कों एवं कारणों के माध्यम से जानने का विज्ञान है। इसलिए भी, शिक्षा दर्शन शिक्षा के क्षेत्र में गहनतम समस्याओं का समग्र रूप में अध्ययन करता है और शिक्षा विज्ञान के लिए उन समस्याओं को अध्ययन के हेतु छोड़ देता है जो तात्कालिक है तथा जिनका वैज्ञानिक विधि से सरलतापूर्वक अध्ययन किया जा सकता है, उदाहरणार्थ : छात्र योग्यता के मापन की समस्या।

अतः हम कह सकते है कि शिक्षा दर्शन शास्त्र की भांति एक विषय है, जो शिक्षा की गहन समस्याओं पर तर्कपूर्ण ढंग से विचार करता है और शैक्षिक समस्याओं का दार्शनिक ढंग से हल निकालने का प्रयत्न करता है।

शिक्षा दर्शन के अध्ययन क्षेत्र में निरन्तर विकास हो रहा है। शिक्षा एक ऐसी सुदृढ़ एवं विकासात्मक प्रणाली है जिससे न केवल राष्ट्र की उन्नति एवं प्रगति को सम्बल मिला, बल्कि ज्ञान के विभिन्न क्षेत्रों में मौलिक चिन्तन का

ISSN : 3048-6173

विकास हुआ। अपनी सुदृढ़ शैक्षिक संरचना एवं प्रबुद्ध चिन्तन धारा के कारण तथा राष्ट्र की एकता, अखण्डता, सभ्यता एवं संस्कृति के संरक्षण तथा नैतिक एवं आध्यात्मिक मूल्यों के विकास पर बल देने के कारण भारतीय शिक्षा प्रणाली विश्व में उत्कृष्ट स्थान पर थी और इसीलिए उसे शिक्षा का जगद्गुरू कहा जाता है। देश की शैक्षिक श्रेष्ठता में अनेक साहित्यों जैसे वेद, पुराण, उपनिषद, गीता, रामायण, महाभारत आदि ग्रन्थों का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। इन उत्कृष्ट साहित्यों में महर्षि वेदव्यास कृति श्रीमद्भगवद्गीता का उत्कृष्ट स्थान है।

शिक्षा दर्शन के विकास में श्रीमद्भगवद् गीता का अपना अलग ही महत्व है।

श्रीमद्भगवद् गीता का दार्शनिक चिंतन

श्रीमद्भगवद् गीता प्राचीन भारतीय वेदान्त दर्शन की अमूल्य निधि है। इसमें ज्ञान, कर्म एवं भक्ति का अनोखा समन्वय दृष्टिगत होता है। गीता उपनिषद्रूपी गायों से भगवान् श्रीकृष्ण द्वारा दुहा गया दुग्धामृत है। भगवान् श्रीकृष्ण ने निष्काम कर्मयोग को, ज्ञान योग को आधार माना है। इन्होंने कहा- हे अर्जुन कर्मयोग की परम्परा में अन्तिम फल ज्ञान योग को तुम प्राप्त करोगे। आत्मा में बुद्धि की अचल स्थिति का नाम ही आत्मसाक्षात्कार है। कर्मयोग से धीरे-धीरे 'सांख्य योग' ज्ञान योग की स्थिति में आता है अर्थात् जीवन परमात्मैक्य रूप का ज्ञान होने लगता है। इस प्रकार श्रीमद्भगवद्गीता में आत्मा, ब्रह्म, जीवन, जगत आदि का विस्तृत विवेचन किया गया है।

श्रीमद्भगवद् गीता का शिक्षा-दर्शन

'गीता' महाभारत के भीष्म पर्व का एक भाग है। भीष्म पर्व में 25-42 तक जो 18 अध्याय है, वे ही गीता कहलाते हैं। इसके रचयिता वेदव्यास जी हैं।

यह भगवान् विष्णु के स्वयं मुखार बिन्दु से निकली है।

गीता के 18 अध्यायों के अन्तर्गत ये निम्नलिखित शैक्षिक विचार दृष्टिगत होते हैं:-

शिक्षा-दर्शन के विकास में गीता के महत्व को प्रकट हुए डा. ओड़ ने कहा है, "गीता का शिक्षा-दर्शन किसी काल-विशेष के लिए नहीं था, अपितु वह सार्वकालिक है। जब-जब समाज में विश्रृंखला उत्पन्न होती है तभी तभी समाज को उन्नत करने के लिए परमात्मा को किसी शिक्षक के रूप में अवतार लेना पड़ता है। सामाजिक परिवर्तन सतत प्रक्रिया है और उस परिवर्तन के अनुरूप सामाजिक प्रक्रिया को नियन्त्रित करने के लिए शिक्षक को हमेशा अवतार की भूमिका निभानी पड़ती है। सामाजिक परिवर्तन के फलस्वरूप उत्पन्न कुंठा को दूर करने के लिए शिक्षक को प्रयास करना पड़ता है।

ISSN : 3048-6173

गीता में कृष्ण ने तत्कालीन धार्मिक एवं सामाजिक विकृतियों को दूरकर मानव को 'निष्काम कर्मयोग' का पाठ पढाने हेतु अवतार लेकर शिक्षक की भूमिका निभाई थी। गीता का शैक्षिक दर्शन उपनिषदों के दार्शनिक विचारों की चरम परिणति है जिसमें ज्ञानयोग भक्ति योग से कर्मयोग का समन्वय कर एक सार्वकालिक एवं सार्वदशीय शिक्षा प्रदर्शन का विकास किया गया है। गीता की शिक्षा का आधुनिक मानव के लिए महत्व प्रदर्शित करते हुए डा. रामगोपाल शर्मा का कथन है :- "गीता एक विश्व दर्शन है। उसकी शिक्षाएँ अर्जुन की तरह 'किंकर्तव्य-विमूढ़' हुए प्रत्येक मानव के लिए मार्गदर्शक है। गीता द्वारा प्रतिपादित निष्काम कर्मयोग का सन्देश आज मानव के लिए अत्यन्त उपयोगी है। फल की आसक्ति का त्याग द्वारा ही कर्म स्वार्थ के धरातल से ऊपर उठकर कल्याण का साधन बन सकता है। गीता मनुष्य के सामाजिक स्वरूप पर बल देती है और निस्वार्थ कर्मशील जीवन का समर्थन करती है।

आज मानवता के लिए इस शिक्षा की बहुत उपादेयता है।"

श्रीमद्भगवद् गीता की वर्तमान युग में प्रासंगिकता

गीता का वर्तमान भारतीय शिक्षा को महत्वपूर्ण सम्भावित योगदान देश की वर्तमान परिस्थितियों में भारतीय शिक्षा, गीता से बहुत महत्वपूर्ण मार्ग-दर्शन प्राप्त कर सकती है।

उसे संक्षेप में इस प्रकार रखा जा सकता है -

- शिक्षा में कर्म (श्रम) का महत्व।
- छात्र तथा शिक्षक अपनी पूरी शक्ति से अध्ययन-अध्यापन की क्रिया में लगें किन्तु उत्तम श्रेणी एवं अच्छी उपाधि के रूप में उसके फल की इच्छा न करें।
- उपाधियां एवं श्रेणियां जो फल की प्रतीक है, उन्हें हटाया जाए।
- छात्रों को उनके स्वाभाविक गुण एवं कर्म (प्रकृति प्रदत्त जन्मजात शक्तियों) के अनुसार शिक्षा दी जाये अर्थात् सभी छात्रों के लिए एक सा पाठ्यक्रय न रह जाये।
- शिक्षा में सुविधायें जन्म के आधार पर नहीं, गुण एवं कर्म के आधार पर दी जाये।
- शिक्षा में अधिकार के स्थान पर कर्तव्य की शिक्षा एवं कर्तव्य करने के अभ्यास पर अधिक जोर दिया जाये।
- शिक्षा में तथ्य, आंकड़े एवं सूचना को कम महत्व देकर नैतिक, आध्यात्मिक पक्ष के विकास पर अधिक बल दिया जाये।

ISSN : 3048-6173

- प्रत्येक व्यक्ति शिक्षा योग्य नहीं होता। उसके लिए पूर्वावश्यकता के रूप में श्रद्धा, सेवा, तत्परता, सयतेन्द्रिता है। जो व्यक्ति अपने को इनमें युक्त कर ले, उसी के लिए शिक्षा के द्वार खोले जायें।
- छात्र को शरीर एवं बुद्धि की ही शिक्षा न दी जाये बल्कि उसको समय विकास की शिक्षा दी जाये।
- केवल भौतिक जगत् सम्बन्धी ज्ञान तक की पाठ्यक्रम को सीमित न रखा जाए।
- शिक्षा के समाजिक उद्देश्यों को महत्व दिया जाये।
- छात्र एवं शिक्षक की भूमिकाओं का सही विश्लेषण कर उन्हें समाज में महत्वपूर्ण स्थान दिया जाये।'

सारांश : यह है कि विभिन्न विकल्पों से आमना-सामना होने पर मनुष्य अपनी बुद्धि कौशल द्वारा सही विकल्प का चयन कर सकता है। यह चयन अपने कर्तव्य (स्वधर्म) के अनुसार किया जाता है। फल और राग की कामना से मुक्त रहना चाहिये। गीता हर प्राणी में ईश्वर को देखने का उपदेश देती है। शिक्षा का उद्देश्य सात्विक ज्ञान, व्यक्तित्व, आन्तरिक चेतना बुद्धि तथा तार्किक योग्यता का विकास होना चाहिये। उन्हें स्वधर्म पालन का महत्व भी बताया जाना चाहिये।

सांसारिक कार्यों के ज्ञान के साथ विद्यार्थियों को आध्यात्मिक ज्ञान भी देना चाहिये। डॉ० वासुदेव शरण अग्रवाल के शब्दों में गीता दर्शन का यह मूल्यांकन उपयुक्त है :- "विश्व के साहित्य में तर्कशास्त्र का और मोक्षशास्त्र का ऐसा रहस्यपूर्ण ग्रन्थ कोई दूसरा उपलब्ध नहीं है, जिससे गीता की तुलना की जा सके।"

संदर्भ सूची-

- पाठक पी.डी., त्यागी जी.एस.डी., "शिक्षा के दार्शनिक सिद्धान्त, विनोद पुस्तक मन्दिर आगरा
- पाण्डेय रामशकल, 'भारतीय शिक्षा दर्शन की रूपरेखा, विनोद पुस्तक मन्दिर आगरा, 2005
- बघेला हेतसिंह, "शिक्षा तथा भारतीय समाज", हर प्रसाद भार्गव आगरा, 1998
- शर्मा डी.एल., "शिक्षा तथा भारतीय समाज, आर.लाल बुक डिपो मेरठ, 1995
- पचौरी गिरीश : शिक्षा दर्शन, मेरठ, आर लाल बुक डिपो, पृसं 319-25
- अग्निहोत्रीः भारतीय शिक्षा-दशा और दिशा, मेरठ, केदारनाथ रामनाथ एण्ड कम्पनी
- ओड, एल के : शिक्षा की दार्शनिक पृष्ठभूमि, जयपुर, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, 1976

ISSN : 3048-6173

शिक्षा की वर्तमान स्थिति का अवलोकन

जितेंद्र कुमार शर्मा
व्याख्याता
राजस्थान शिक्षक प्रशिक्षण विद्यापीठ
शाहपुरा बाग आमेर रोड जयपुर

वर्तमान समय में भारतीय शिक्षा प्रणाली में कई चुनौतियाँ और मुद्दे देखे जा सकते हैं। बच्चों को बेहतर और उन्नत शिक्षा प्रदान करने के लिए इन चुनौतियों और मुद्दों को हल करने की आवश्यकता है। देश के लिए एक स्थायी भविष्य सुनिश्चित करने के लिए बच्चों को उचित शिक्षा प्रदान की जानी चाहिए। स्वतंत्रता के बाद से अब तक भारतीय शिक्षा प्रणाली में बहुत कुछ बदल गया है। हालाँकि, समग्र शिक्षा प्रणाली में कुछ समस्याएँ और खामियाँ बनी हुई हैं जिन्हें दूर करने की आवश्यकता है। यह देखा जा सकता है कि शिक्षा के मामले में भारत 50 देशों में दूसरे स्थान पर है। पूरे लेख में भारतीय शिक्षा प्रणाली की वर्तमान स्थिति पर चर्चा की जाएगी। इस संदर्भ में, वर्तमान शिक्षा प्रणाली में चुनौतियों और उनके समाधानों का भी विश्लेषण किया जाएगा।

शिक्षा क्या है ?

o शिक्षा व्यापक रूप से मानव समाज के विकास और प्रगति का महत्वपूर्ण कारक है। शब्द "शिक्षा" संस्कृत शब्द "शिक्ष" से निकला है, जिसका अर्थ होता है "शिक्षक की शिक्षा"। इसका मतलब है कि शिक्षा एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें ज्ञान, सूचना, और कौशल की प्राप्ति होती है और इसे एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति के माध्यम से सीखा जाता है।

o शिक्षा एक महत्वपूर्ण प्रक्रिया है जो मनुष्य के जीवन में ज्ञान, संज्ञान, और बुद्धिमत्ता का विकास करती है। इसके माध्यम से हम अपने अद्यापि ज्ञान को बढ़ाते हैं और नई जानकारी को आवश्यक और उपयोगी तरीके से प्राप्त करते हैं। इसलिए छात्रों को हिंदी में शिक्षा का महत्व पर निबंध (Importance of Education Essay in Hindi) लिखने का प्रयास करते रहना चाहिए।

o शिक्षा व्यक्ति को जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में योग्यता, कौशल, और सामरिकता प्रदान करती है। इसके द्वारा व्यक्ति मनोवैज्ञानिक विकास, भावनात्मक समझ, समाजसेवा की भावना, व्यक्तिगत उत्थान और आर्थिक स्वावलंबन का मार्ग तय करता है।

ISSN : 3048-6173

o शिक्षा का आदान-प्रदान विभिन्न माध्यमों जैसे कि स्कूल, कॉलेज, विश्वविद्यालय, और विभिन्न शैक्षिक संस्थान, आदि द्वारा हो सकता है। इसके साथ ही, हिंदी में शिक्षा का महत्व पर निबंध (Importance of Education Essay in Hindi) का अवसर आधारित भी होता है जहां लोग नया ज्ञान और कौशल प्राप्त करने के लिए उच्चतम शिक्षा के संरचित पाठ्यक्रमों में भाग लेते हैं।

o शिक्षा मानव समाज के विकास के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है। यह न केवल ज्ञानार्जन का साधन है, बल्कि यह समाज के न्याय, समानता, और विश्वसम्मतता को प्राप्त करने का माध्यम भी है। शिक्षित लोग समाज में सक्रिय भूमिका निभाते हैं और सामरिकता, संप्रेम, और सद्भाव की स्थापना करते हैं।

o शिक्षा व्यक्ति को आत्मनिर्भर बनाती है, उसे सही नीतियों, मूल्यों, और संस्कृति का ज्ञान प्रदान करती है। शिक्षा उन गुणों का विकास करती है जो एक व्यक्ति को समाज में सफल बनाते हैं, जैसे कि बुद्धिमत्ता, सहजता, विचारशीलता, संघटनशीलता, और संगठन क्षमता।

o शिक्षा के विभिन्न प्रकार हैं जैसे कि मौलिक शिक्षा, मानविकी, साहित्यिक शिक्षा, वैज्ञानिक शिक्षा, गणित शिक्षा, कला शिक्षा, और व्यावसायिक शिक्षा। ये शिक्षा के विभिन्न क्षेत्रों में विशेषज्ञता और व्यापक ज्ञान का विकास करते हैं।

लाभ

o **रोजगार के अवसर:** शिक्षा प्राप्त करने से हमें विभिन्न क्षेत्रों में रोजगार के अवसर प्राप्त होते हैं। शिक्षित लोग अधिकांश उच्चतर शिक्षा, पेशेवरता, और विशेषज्ञता के क्षेत्र में कार्य कर सकते हैं, जो उन्हें सामरिक, आर्थिक और मानसिक रूप से संतुष्टि प्रदान करता है।

o **विकास के अवसर:** शिक्षा हमारे व्यक्तिगत और व्यावसायिक विकास के अवसर प्रदान करती है। शिक्षा द्वारा हम नए और आविष्कारी विचारों का विकास करते हैं। संभावितताओं को पहचानते हैं, और संभावनाओं को बढ़ावा देते हैं। यह हमारे सामाजिक, आर्थिक, और व्यक्तिगत स्तर पर विकास की संभावनाओं को बढ़ाती है।

o **आर्थिक लाभ:** शिक्षा प्राप्त करने से हमें आर्थिक लाभ प्राप्त होता है। शिक्षित लोगों के पास अधिक रोजगार के अवसर होते हैं और उन्हें उच्चतर वेतन का लाभ मिलता है। यह उनके आर्थिक स्थिरता, सुख, और आर्थिक स्वावलंबन को सुनिश्चित करता है।

o **सामाजिक सुविधाएं:** शिक्षा लेने से हमें सामाजिक सुविधाएं मिलती हैं। शिक्षा हमें समाज की समस्याओं के समाधान के लिए कर्मठता, संघटनशीलता, और सामाजिक जिम्मेदारी की भावना प्रदान करती है। शिक्षित लोग

ISSN : 3048-6173

समाज में सक्रिय भूमिका निभाने में सक्षम होते हैं और सामाजिक उद्धार के लिए योगदान करते हैं।

o **व्यक्तिगत सुख:** शिक्षा हमें व्यक्तिगत सुख की प्राप्ति के लिए मदद करती है। शिक्षा हमारी मानसिक, भावनात्मक, और आध्यात्मिक विकास में मदद करती है। शिक्षित लोग अपनी रुचियों, कौशलों, और रूचियों को विकसित करके अपने जीवन में खुशहाली और संतुष्टि का आनंद लेते हैं।

शिक्षा के अवसरों और लाभों से हमें समृद्ध, स्वतंत्र, और समरस समाज के निर्माण में मदद मिलती है। यह हमारे व्यक्तिगत और समाजिक विकास को संवारती है और हमें आदर्श नागरिक के रूप में समर्पित करती है।

भारतीय शिक्षा प्रणाली की वर्तमान स्थिति

भारत पूरी दुनिया में शिक्षा प्रणाली में एक महत्वपूर्ण स्थान रखता है। भारत में लगभग 1.5 मिलियन स्कूल हैं जिनमें 260 मिलियन छात्र नामांकित हैं। इसके अलावा, देश में 751 विश्वविद्यालयों के अंतर्गत लगभग 35,539 कॉलेज हैं। इसलिए यह आसानी से कहा जा सकता है कि शिक्षा का सबसे बड़ा और सबसे उन्नत ढाँचा भारत में मौजूद है। हालाँकि, भारतीय शिक्षा ढाँचे में सुधार की बहुत संभावना है। यह कहा जा सकता है कि आने वाले वर्षों में भारतीय शिक्षा प्रणाली में महत्वपूर्ण सुधार हो सकता है। वर्तमान में, भारत में शिक्षा बाजार का अनुमान 100 बिलियन अमेरिकी डॉलर है और 2020 तक इसके 180 बिलियन अमेरिकी डॉलर तक बढ़ने का अनुमान है। अप्रैल 2000 से दिसंबर 2017 तक शिक्षा क्षेत्र में FDI या प्रत्यक्ष विदेशी निवेश की कुल राशि 1.67 बिलियन अमेरिकी डॉलर थी। प्रशिक्षण और शिक्षा क्षेत्र में अतीत में कुछ महत्वपूर्ण सुधार और अटकलें देखी गई हैं। इन्हें निम्नलिखित में रेखांकित किया गया है।

कौशल विकास के लिए संस्थागत प्रणाली को उन्नत करने हेतु संकल्प परियोजना के अंतर्गत भारत द्वारा विश्व बैंक के साथ ऋण की व्यवस्था की गई है।

इसके अलावा, दिल्ली स्थित भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान ने शीर्ष संगठनों में नियुक्ति के लिए 2017 की वैश्विक विश्वविद्यालय रोजगारपरकता रैंकिंग में 145वां स्थान हासिल किया है।

डाबर इंडिया लिमिटेड ने ढेकियाल गांव में महिलाओं के लिए कौशल विकास केंद्र खोला है। यह असम का एक प्रांत है जो ग्रामीण महिलाओं को स्वतंत्र काम के साथ-साथ बेहतर काम के अवसर प्रदान करने में मदद करेगा।

भारत की वर्तमान शिक्षा प्रणाली में मुद्दे

भारत की वर्तमान शिक्षा प्रणाली में समस्याओं को निम्नलिखित रूप में रेखांकित किया गया है।

ISSN : 3048-6173

क्षमता उपयोग: वर्तमान समय में रचनात्मक दिमाग की बहुत आवश्यकता है। इसलिए, भारत सरकार को स्कूलों को प्रोत्साहित करने पर ध्यान केंद्रित करना चाहिए ताकि वे छात्रों की रचनात्मकता को बढ़ावा दें और यह सुनिश्चित करें कि छात्रों के विचारों को अनसुना न किया जाए।

ब्रांडिंग और मान्यता: गुणवत्ता मानक

पीपीपी मॉडल: उचित रूप से डिज़ाइन किया गया पीपीपी मॉडल स्कूल प्रणाली के भीतर शिक्षा को सुविधाजनक बना सकता है। इन पीपीपी मॉडल या निजी सार्वजनिक मॉडल को ध्यान में रखा जाना चाहिए।

शिक्षक-छात्र अनुपात: यह देखा जा सकता है कि उचित शिक्षा प्राप्त करने वाले छात्रों की संख्या उपलब्ध शिक्षकों और संकायों की तुलना में बहुत अधिक है। इसलिए, उचित रूप से योग्य शिक्षकों को नियुक्त करने की आवश्यकता है ताकि वे देश की बेहतरी के लिए ज्ञान प्रदान कर सकें।

भारत की वर्तमान शिक्षा प्रणाली की समस्याओं का समाधान

भारतीय शिक्षा प्रणाली में पहचानी गई समस्या के कुछ समाधान निम्नलिखित अनुभाग में रेखांकित किए गए हैं।

शैक्षिक गुणवत्ता: शहरी क्षेत्रों में प्रदान की जाने वाली शिक्षा और ग्रामीण क्षेत्रों में प्रदान की जाने वाली शिक्षा में बहुत अंतर है। पूरे भारत में शिक्षा के समग्र विकास के लिए ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों में शिक्षा का एक मानकीकृत रूप प्रदान करने के लिए उचित कदम उठाए जाने की आवश्यकता है।

नवाचारों की आवश्यकता: वर्तमान में भारत डिजिटल शिक्षा को अपना रहा है। इससे छात्रों के नवोन्मेषी दिमाग के साथ-साथ देश के युवाओं के दिमाग को भी बेहतर बनाने में मदद मिलेगी।

सभी के लिए शिक्षा को किफायती बनाना: भारत में सरकारी शिक्षण संस्थान किफायती हैं। हालाँकि, उनमें गुणवत्ता और बुनियादी ढाँचे की कमी है। सरकार को शिक्षण संस्थानों के बुनियादी ढाँचे को बेहतर बनाने के साथ-साथ उन्हें सभी प्रकार के छात्रों के लिए किफायती बनाने की दिशा में काम करना चाहिए।

निष्कर्ष

यह समग्र लेख भारत में शिक्षा की वर्तमान स्थिति के मूल विषय पर लिखा गया है। इसका विश्लेषण करने के लिए सबसे पहले भारत की वर्तमान स्थिति पर चर्चा की गई है। इसके बाद, भारत की वर्तमान शिक्षा प्रणाली में मौजूद मुद्दों का विश्लेषण किया गया है। अंत में, इन पहचाने गए मुद्दों के लिए कुछ समाधान प्रदान किए गए हैं।

ISSN : 3048-6173

शिक्षा कौस्तुभ | ▪▪▪■▪▪▪ | त्रैमासिक शोध पत्रिका

प्राचीन भारत में गुरुकुल शिक्षा प्रणाली का अध्ययन

डॉ. सुभाष मीना
सहायक आचार्य
राजस्थान शिक्षक प्रशिक्षण विद्यापीठ, शाहपुरा बाग

सारांश: प्राचीन भारत में गुरुकुल शिक्षा प्रणाली का अध्ययन करने के उद्देश्य से प्रस्तुत शोध में प्राचीन भारत में प्रचलित गुरुकुल शिक्षा प्रणाली के अंतर्गत गुरुकुल शिक्षा का प्राचीन भारतीय दृष्टिकोण, उद्देश्य, आदर्श, शिक्षा का दायित्व, गुरुकुल शिक्षा प्रणाली की उत्पत्ति और विकास, गुरुकुल का अर्थ, गुरुकुलों का पर्यावरण, गुरुओं के प्रमुख आश्रम और उनका पर्यावरण, गुरुकुल शिक्षा प्रणाली का मनोवैज्ञानिक आधार, आचार्य का व्यक्तित्व तथा आदर्श, शिक्षा का स्वरूप, गुरु शिष्य तथा उनके पारस्परिक संबंध, गुरुकुल में प्रवेश तथा शैक्षिक संस्कार और अध्ययन अवधि, उपनयन संस्कार की प्राचीनता, गुरुकुल शिक्षा की अवधि, गुरुकुल शिक्षा और पाठ्यक्रम, अपरा विद्या तथा इसके अंतर्गत आने वाले विषय, परा विद्या और इसके अंतर्गत आने वाले विषय, गुरुकुल शिक्षा और शिक्षण विधि, परीक्षा पद्धति तथा गुरुकुलों में विद्यार्थियों की दिनचर्या, गुरुकुलों में अवकाश के दिन और अनध्याय, शिक्षा सत्र, अनुशासन, गुरुकुलों में अनुशासन स्थापना के मेरुदंड, ब्रह्मचर्य, संयम, श्रम, तप व्रत, ग्रहण और व्रत पालन विद्यार्थियों की संख्या और उनकी वेशभूषा आदि का सूक्ष्म अध्ययन किया गया। इन उपर्युक्त व्यवस्था के अनुकरणीय तत्वों का वर्तमान शिक्षा व्यवस्था में स्थान दिया जाना चाहिए।

प्रस्तावना

प्राचीन साहित्य में शिक्षा के महान् आचार्य और गुरुकुलों का उल्लेख आता है। प्राचीन भारत की संस्कृति को सुरक्षित रखना उनका विकास तथा प्रसार करने में यह शिक्षा केन्द्रों ने बड़ी भूमिका का निर्वाह किया। प्राचीन भारत के ऋषि महर्षियों ने अपनी संस्कृति के पावन तट पर बैठकर, जीवन के विविध रहस्यों का अवलोकन और विवेचन किया था। इसी आधार पर वह संपूर्ण देश को एक सूत्र में आबद्ध कर सके। यहां का अतीत सामाजिक, सांस्कृतिक तथा आर्थिक कारकों से उतना प्रभावित नहीं रहा जितना की आध्यात्मिकता ने उसे प्रभावित किया। यहां का मानव जीवन

ISSN : 3048-6173

दर्शन सर्वभूत हिते रतः रहा है। यहां की संस्कृति में विश्व बंधुत्व तथा अति मानवता का सपना देखा है। अतएव हमारे आचरण चरित्र आदर्श आदि का निर्माण आत्मतत्व के ही आधार पर होना चाहिए। शिक्षा का उद्देश्य विद्यार्थी को समाज का एक धर्मनिष्ठ सदस्य बनाने में बहुत सहायक था। इस प्रकार व्यक्तित्व के विकास के निर्माता अर्जित ज्ञान विवेक एवं आत्मविश्वास आवश्यक थे। प्राचीन भारत के गुरुकुलों में छात्रों को इस प्रकार के पर्यावरण से प्रेरणा मिलती थी जिससे उनके व्यक्तित्व में उदात्त गुणों का विकास स्वतः हो जाता था। उसके व्यक्तित्व पर ही राष्ट्र का भविष्य आधारित था। शिक्षा प्रत्येक क्षेत्र में नैपुण्य अर्जन में सहायक मानी जाती थी। आचार्य के समीप निवास करने वाले विद्यार्थियों में शिक्षा के साथ ही साथ जिन दिव्य गुणों का विकास होता था। गुरुकुल छोड़ने तक वह उनका अभ्यास भी करता था तपस्या उसमें संयम लाती थी गुरुकुल में संयम तथा विधिविहित जीवन जो अभावों से पूर्ण था उसमें त्याग की मानवता की सृष्टि करता था इस भावना के आने से मनुष्य विश्व को अनासक्त भाव से देखता है उनमें वास्तविक निर्णय तथा समत्व बुद्धि का विकास हो जाता है। इस प्रकार बच्चों को शिक्षा व संस्कार देने का कार्य गुरुकुलों का ही था।

समस्या कथन

प्राचीन भारत में गुरुकुल शिक्षा प्रणाली का अध्ययन

समस्या का औचित्य में प्रासंगिकता

वर्तमान में प्रचलित शिक्षा प्रक्रिया में प्रचलित प्राचीन गुरुकुल व्यवस्था के विशिष्ट गुणों व तत्वों का समावेश करके वर्तमान शिक्षा प्रणाली को वास्तविक अर्थ में सुधार कर सके। यही शोधार्थी के शोध का औचित्य एवं प्रासंगिकता है।

पारिभाषिक शब्दों की व्याख्या

गुरुकुल - गुरु का ग्रह या गुरु का परिवार जहां पर शिष्य शिक्षा प्राप्त करता है।

प्राचीन - ऐतिहासिक दृष्टिकोण से पुरातन एवं पुराना|

उपनयन संस्कार - आचार्य द्वारा ग्रहण करना अर्थात् ब्रह्मचारी को गुरु के पास ले जाना। गुरु के सामने सामीप्य में नवीन प्रकार का जीवन बिताने का संस्कार, एक प्रकार का गर्भ प्रवेश है।

पराविद्या - सर्वोच्च ज्ञान या आत्मज्ञान

ISSN : 3048-6173

समावर्तन संस्कार – गुरुकुल की शिक्षा समाप्त कर लेने पर स्नातक को विद्वानों के समक्ष उपस्थित होकर मौखिक प्रश्नोत्तर माध्यम से अपनी श्रेष्ठता सिद्ध करना।

ब्रह्मचर्य- तेजोमय बह्म को धारण करना उसमें समस्त देवता निवास करते हैं। वह तप एवं इंद्रिय संयम करता है।

अध्ययन क्षेत्र का परिसीमन

प्रस्तुत शोध में प्राचीन भारत में गुरुकुल शिक्षा प्रणाली के अध्ययन तक परीसीमित किया गया है।

शोध उद्देश्य

प्रस्तुत शोध का उद्देश्य प्राचीन भारत में गुरुकुल शिक्षा प्रणाली के अंतर्गत गुरुकुलों का स्वरूप और विकास, गुरुकुलों शिक्षा प्रणाली की उत्पत्ति, गुरुकुलों का पर्यावरण, गुरु शिष्य के आदर्श तथा संबन्ध, गुरुकुल में प्रवेश प्रक्रिया, शैक्षिक संस्कार, अध्ययन अवधि, गुरुकुल शिक्षा का पाठ्यक्रम शिक्षण विधि और परीक्षा गुरुकुलों में दिनचर्या अनध्याय, शिक्षा सत्र अनुशासन व वेशभूषा आदि का अध्ययन करना है।|

शोध विधि - प्रस्तुत शोध में ऐतिहासिक एवं दार्शनिक विधि का प्रयोग किया गया है।

प्रदत्त संकलन एवं व्याख्या

अध्ययन क्षेत्र का परिसीमन होने के बाद प्राचीन भारत में गुरुकुल शिक्षा प्रणाली का अध्ययन करने के लिए विभिन्न पुस्तकालयों में जाकर विस्तृत अध्ययन किया गया। संबंधित साहित्य व गुरुकुल शिक्षा का प्राचीन भारतीय दृष्टिकोण, गुरुकुल शिक्षा प्रणाली का मनोवैज्ञानिक आधार, आचार्य का व्यक्तित्व, गुरु शिष्य संबंध, गुरुकुल के शैक्षिक संस्कार, शिक्षा पाठ्यक्रम, गुरुकुल के विद्यार्थियों की दिनचर्या, गुरुकुल के अवकाश के दिन, अनाध्याय, शिक्षा सत्र, अनुशासन, गुरुकुल में संयम, श्रम, तप व्रत, ग्रहण व्रत पालन आदि के बारे में विस्तृत अध्ययन कर तथ्य, संकलन किया गया तथा उनका विश्लेषण कर, गुरुकुल शिक्षा प्रणाली का अध्ययन किया।

शोध निष्कर्ष - प्राचीन भारत में गुरुकुल शिक्षा प्रणाली का अध्ययन करने से इस निष्कर्ष पर पहुंचे की प्राचीन गुरुकुल शिक्षा प्रणाली में प्रवेश प्रक्रिया, गुरु का व्यक्तित्व, शिष्य का स्वरूप, तथा आदर्श, गुरु शिष्य के पारस्परिक संबंध, शैक्षिक संस्कार, शिक्षा पाठ्यक्रम, शिक्षण विधि, विषय, परीक्षा प्रणाली, वह गुरुकुलों का शांत सौम्य वातावरण, आध्यात्मिक शिक्षा चरित्र निर्माण प्रक्रिया, गुरुकुलों में लोकतंत्रात्मक उत्तरदायित्वपूर्ण प्रबंधन व्यवस्था

ISSN : 3048-6173

स्वाध्याय चिंतन, वाद-विवाद छात्र के आचार विचार आदि गुरुकुल शिक्षा प्रणाली के तत्वों का पता चलता है। जिनको वर्तमान शिक्षा प्रणाली में अंगीकार करना आवश्यक एवं प्रासंगिक है।

सुझाव:- प्रस्तुत शोध प्राचीन भारत में गुरुकुल शिक्षा प्रणाली का अध्ययन किया गया। इसके अतिरिक्त गुरुकुल शिक्षा प्रणाली में वर्तमान शिक्षा प्रणाली का तुलनात्मक अध्ययन, वर्तमान शैक्षिक परिपेक्ष्य में गुरुकुल शिक्षा प्रणाली की प्रासंगिकता का विशेषणात्मक अध्ययन, तथा वर्तमान शिक्षा प्रणाली की समस्याओं के निवारण में गुरुकुल शिक्षा प्रणाली की भूमिका का अध्ययन किया जा सकता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. मुखर्जी राधा कुमुद (1983) प्राचीन भारत राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली

2. शर्मा हरिशंकर (2004) प्राचीन भारत का इतिहास जयपुर पब्लिसिंग हाउस जयपुर राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली

3. थापर रोमिल्ला (1991) भारत का इतिहास

4. गोयल, डॉ. प्रतिभा (1993) भारतीय संस्कृति राजस्थान ग्रन्थालय जोधपुर 5. त्रिपाठी सालिग्राम (2005) भारतीय शिक्षा का इतिहास पब्लिकेशन, नई दिल्ली

6. भार्गव, डॉ. वी. एस (2006) भारतीय इतिहास राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर

7. अग्रवाल रामचन्द्र (1970) भारतवर्ष का सम्पूर्ण इतिहास - एस चंद .एण्ड कम्पनी, नई दिल्ली

8. गुप्त नन्थुल (1978) प्राचीन भारतीय शिक्षा – चेतना प्रकाशन नागपुर

9. गौड, रीता (2005) प्राचीन भारत युनिवर्सिटी बुक हाउस, जयपुर 10. कुमार गीता (2001) वेद में शिक्षा का स्वरूप - एक अध्ययन – क्लासिक पब्लिकेशन, जयपुर

11. दुबे डॉ. सत्यनारायण, शरतेन्दु (2007) प्राचीन भारत में शिक्षा - शारदा पुस्तक भवन –इलाहाबाद

ISSN : 3048-6173

THE USE OF MULTIMEDIA TECHNOLOGY IN ENGLISH LANGUAGE TEACHING

Dr Manisha Sharma
Principal
Rajasthan Shikshak prashikshan Vidyapeeth

ABSTRACT

This article aims to analyze the use of technology to English language teaching in the non-native speaking countries and to bring out the problems faced by both teachers and learners of English. The rapid development of science and technology such as multimedia technology has offered a better tool to explore the new teaching method. In fact, multimedia technology has played an important role in English language teaching, especially, in the non-native speaking of English situations. It also aims to make non-native speakers of English as language teachers aware of the strategies to use it in an effective manner.

There are so many non-native speaking countries, English is used as a second or third language and for some people the first language. With the spread and development of English around the world, it has become an important means of communication among the people of different cultures and languages. At present, the role and status of English in non-native speaking countries is higher than ever as it is a medium of instruction and curriculum in educational institutions. As a number of English learners are growing up, different teaching methods have been experimented to see the effectiveness of English language teaching. The use of technology in the form of lms, radio,TV and tape recording has been there for a long time. I mean"Technology has turned into one essential aspect of society that helps students to understand the bigger picture of the world and not just stay connected to what schools and teachers teach them within their classrooms". Of course, the technology has proved to be successful in replacing the traditional language teaching.

The modern language teachers have new challenges and duties given by the new era. The tradition of English teaching has been drastically changed with the remarkable development of newer technologies such as multimedia technology.

ISSN : 3048-6173

Here are some common gadgets of multimedia:

Smartphones: Smartphones are multifunctional devices that allow users to access the internet, make phone calls, send texts and emails, and consume and create multimedia content such as photos, videos, and music.

Tablets: Tablets are portable devices that have a touch screen and are designed for consuming multimedia content, such as movies, TV shows, and books. They can also be used for creating multimedia content, such as drawing and writing.

Laptops: Laptops are portable computers that allow users to access the internet, create and consume multimedia content, and perform various other tasks.

Smart TVs: Smart TVs are television sets connected to the internet and allow users to access streaming services, such as Netflix and Hulu, and consume other multimedia content.

Game consoles: Game consoles are devices designed specifically for playing video games. They often have powerful processors and graphics capabilities and the ability to connect the internet and access multimedia content such as movies and TV shows

Technology provides so many options as it makes teaching interesting and productive because it has capability to attract the language learners.Technology is one of the most significant drivers of both social and linguistic change.

Technology helps the students to get involved and learn according to their interests. It has been tested effective and has been widely accepted as a tool for English language teaching around the world. In particular, it has been utilized for the upliftment of modern techniques of language teaching.

THE USE OF MULTIMEDIA TECHNOLOGY IN -

As the popularity of English is expanding day by day and worldwide, the teachers of English feel the need of change in their language teaching methods.There are teachers who use the "leading edge of technological and scientific development" but the majority of teachers still teach in the traditional manner. However, this article does not claim that none of these traditional manners are bad or damaging the students. In principle, they are proving to be useful even today. There are many opportunities for students to gain confidence in

ISSN : 3048-6173

learning English who learn the language for more than just fun. For them, to keep pace with English language teaching and gain more confidence, they have to stride into the world of multimedia technology. Here, multimedia technology refers to computer-based interactive applications that use both the hardware and software, allowing people to share their ideas and information. It is a combination of text, graphics, animation, video and sound. The twenty first century is the age of globalization and information technology and English is one of the important mediums of communication in the world, so it is important to learn the language. As a result, English language teaching has been one of the important subjects in education. In fact, there are more non-native than native speakers of the language.There is also the diversity of context in terms of learner's age, nationality, and learning background that has become an important feature of English language teaching today.

With the rapid growth of science and technology, the use of multimedia technology in language teaching has created a favorable context for reforming and exploring English language teaching models in the new age. This trend features the use of audio, visual, and animation effects in the English language teaching classrooms. Multimedia technology plays a positive role in improving activities and initiatives of students and teaching effect in the classrooms. In this positive sense computers are no longer the exclusive domains of a few individuals, but rather they are available to many. As the English language teaching models change rapidly, there has been a significant growth of literature regarding the use of technology in English language teaching.

These literatures unequivocally accept technology as the most essential part in teaching. Such a tendency has emphasized on an essential role of technology in pedagogy in which technology has been dominant over the teachers. As a result, if we ignore technological developments, the teachers will never be able to catch up with the new trend, irrespective of our discipline or branch. Teachers need to stop following the same old ways of teaching and experiment and acknowledge that the world is changing and we need education that augments that change. For this reason, it is important for language teachers to be aware of the latest and best equipments and to have all information of what is available in any given situations. Teachers can use multimedia technology to create more colorful and stimulating language classes. There are many techniques applicable in various forms to English language teaching situations that now threaten "to undermine the classroom completely as a place of study". Some are useful for testing and distance education; some

ISSN : 3048-6173

for teaching English, spoken English, reading, listening or interpreting. The principle of teaching should be to appreciate new technologies without taking over the role of the teacher and without limiting the functions of traditional teaching methods. There are various reasons why all language teachers and learners must know how to make use of the new technology. Most importantly, the new technologies have been discovered and disseminated so quickly that we cannot avoid their attraction and influence on all of us: both teachers and learners, even both native and non-native speakers of English.

ADVANTAGES OF THE MULTIMEDIA

As the multimedia technology becomes more readily available to all of us, it seems appropriate that the language teachers should integrate it into their lesson and assessment planning in the same way they have been doing with video and computer assisted learning strategies. The students are surrounded by technology and this technology can provide interesting and new approaches to language teaching because "the use of technology for teaching and learning is moving their institution in the right direction". In this way, the teachers of English can take full advantage of technology to teach English in the non-native speaking countries.

The following are some of the important advantages of the use of multimedia technology:

1- Improved Learning and Retention

2- Enhanced Communication

3- Increased Accessibility

4- Increased Interactivity

5- Improved learning outcomes

6- Increased efficiency

7- Greater Flexibility

8- Greater impact

ISSN : 3048-6173

शिक्षा कौस्तुभ त्रैमासिक पत्रिका

सदस्यता फार्म

नाम / संस्था का नाम ----------

ग्राम ---------- पोस्ट ----------

तहसील ---------- जिला ----------

फोन ---------- पिन कोड ☐☐☐☐☐☐

राशि (रुपये) ---------- बैंक का नाम ----------

डिमाण्ड ड्राफ्ट/मनीऑर्डर क्रमांक ☐☐☐☐☐☐ (डीडी / एमओ **राजस्थान शिक्षक प्रशिक्षण विद्यापीठ** के नाम से भेजे)

सदस्यता शुल्क : एक वर्ष - 500/- पांच वर्ष - 2100/-

सदस्यता हेतु लिखे

शिक्षा कौस्तुभ, राजस्थान शिक्षक प्रशिक्षक विद्यापीठ

शाहपुरा बाग, आमेर रोड़, जयपुर

Mobile : 9460124083 E-mail : info@rspv.org Website : www.rspv.org

Bank Detail

Bank Name	:	**Punjab National Bank**
Branch	:	**Air Force School, Amer Road, Jaipur**
A/c No.	:	**2976010100001063**
IFS Code	:	**PUNB0620100**

विद्यापीठ में आयोजित कार्यक्रमों की झलकियाँ

ISSN : 3048-6173

पंजाब केसरी

समाजोपयोगी उत्पादक कार्य शिविर 'ऋतुराज' आयोजित

परीक्षणों के प्रयोग व उपयोग पर मंथन

संस्कारों की आधार शिला है संस्कृत : डॉ. मनीषा शर्मा

प्रकाशक

पण्डित मोतीलाल जोशी
प्राच्य विद्या अनुसंधान केन्द्र

राजस्थान शिक्षक प्रशिक्षण
विद्यापीठ

राजस्थान संस्कृत साहित्य
सम्मेलन

शाहपुरा बाग, आमेर रोड़, जयपुर Ph. : +91-141-2671967 | E-mail : info@rspv.org | Website : www.rspv.org